नाथ शास्त्री व पृथ्वीनाथ

हिन्दी
गद्य-पद्य संग्रह

एस० चन्द एण्ड कम्पनी दिल्ली

हिन्दी

गद्य-पद्य संग्रह

संग्रहकर्ता

पृथ्वीनाथ पुष्प एम०ए० एम०ओ० एल०
शास्त्री, प्रभाकर

व

रामनाथ शास्त्री एम०ए०

गांधी मेमोरियल कालिज, जम्मू

एस० चन्द एन्ड कम्पनी,

फव्वारा—दिल्ली

मूल्य २॥)

मुद्रक—
गद्य भाग, रतन प्रेस, दिल्ली।
पद्य भाग, जय्यद प्रेस, दिल्ली।

दो शब्द

प्रस्तुत संकलन हिन्दी साहित्य के प्रारम्भिक विद्यार्थियों की आवश्यकताओं को ध्यान में रख कर तैयार किया गया है। लेखों और कविताओं को संकलित करने में इस बात पर अधिक ध्यान रखा गया है कि विषय रोचक हों तथा स्वतन्त्र भारत के नवीन वातावरण में बढ़ने वाले नवयुवकों में देश प्रेम सच्चरित्रता, साहस और उपयोगी ज्ञान का संचार करने वाले हों। रचनाओं के विषय और विचारों का स्तर ऊंचा होते हुए भी, भाषा यथासंभव सरल है और भाषा तथा भाव की दृष्टि से ऊंचे 'स्टैंडर्ड' की ओर क्रमशः विकास होता गया है। विद्यार्थियों में हिन्दी साहित्य की ओर विशेष रुचि उत्पन्न करने के लिये विद्वान् लेखकों और प्रसिद्ध कवियों की रचनाओं का संग्रह किया गया है। अनुभवशील अध्यापकों से आशा की जाती है कि 'हिन्दी' के प्रति विद्यार्थियों में 'गौरव' की भावना भरने के हेतु इन साहित्यकारों के बारे में रोचक ढंग से और भी बातें बताने का प्रयत्न करेंगे।

जिन महानुभावों के लेखों तथा कविताओं का संकलन करने का साहस मैंने किया है, उनके प्रति हार्दिक कृतज्ञता प्रकाशित करता हूँ। कहीं कहीं मौलिक लेखों और कविताओं में आवश्यकतानुसार काट-छांट करने की जो स्वाधीनता ग्रहण की है, उसके लिये क्षमाप्रार्थी हूँ।

संकलनकर्त्ता

विषय--सूची

गद्य-भाग

पद्य--भाग

(१)

साल का नया दिन

नये संवत् का पहला दिन है। जो वर्ष कल तक था, वह आज नहीं रहा। रात के साथ अन्धेरा रहते रहते वह किसी ऐसे देश की यात्रा पर चला गया है, जहां से लौट नहीं सकता। कुछ ही घंटे हुए हैं अभी,—फिर भी किसी मोटर-गाड़ी या हवाईजहाज के द्वारा भी उसका पीछा असम्भव है। किसी तरह अब उसके लौटने का उपाय नहीं रहा। जो जल-धारा समुद्र से जा मिलती है, भले ही तट के पास हो, तब भी वह थल की नहीं रहती, उसका कुल गोत्र और नाम बदल जाता है।

थल को सन्तोष है, उसका जल समुद्र से जा मिला है, तब भी उसका भण्डार रीत नहीं गया। वह उसी तरह बह रहा है, वह उसी तरह लहरा रहा है। क्षण-भर के लिये भी वह कुण्ठित दिखाई नहीं देता। उसमें पहले की तरह ही गति-नृत्य है। उसकी निरन्तरता टूट नहीं गई। उसकी धारा कल्पधारा है। लेने वाले को वह निराश नहीं करेगी। बराबर वह आनन्द दान करती जा रही है।

जलधारा जैसा ही समय धारा का हाल है। दिन गये, रातें गईं, पखवारे बीते, महीने गत हुये। धीरे-धीरे अथवा जल्द जल्द, एक ही चाल से अब यह पूरा का पूरा बरस चला गया है। फिर भी जान नहीं पड़ता कि कुछ रुक गया हो। कुछ घंटे पहले पिछला साल था और अब अगला है। इन दोनों के बीच विच्छेद का स्वर कहां खटक उठा था? इसका पता नहीं चलता। रात और दिन की धूप-छांव के एक ही अखण्ड वस्त्र में कहीं गांठ का जोड़ या सीवन आ पड़ने का प्रसंग तक नहीं उठा।

समय जाता है और समय आता है। बीचमें छेद नहीं पड़ता। यह क्रम न जाने कब से चल रहा है! आगे और पीछे की ओर जितना देखते हैं, इसके सिवा और कुछ देखा और समझा नहीं जाता। कभी दिन और रात छोटे हुए और कभी बड़े हुए। यह ऐसी बात है कि कभी माप का गज छोटा है और कभी बड़ा। मापी जाने वाली वस्तु इससे छोटी या बड़ी नहीं होती। काल अनन्त है, अक्षय और अखण्ड है।

फिर भी हमें उसके खण्ड-खण्ड करने पड़ते हैं। फिर भी हमें उसकी सीमा बांधनी पड़ती है। ऐसा किये बिना हमारा चलावा नहीं चलता।

वैज्ञानिक कहता है, पदार्थ के अणु और परमाणु विच्छिन्न कर दो, तो उनमें से एक दुर्निवार शक्ति प्रकट हो पड़ेगी। काल के यह परमाणु अलग अलग करके हम अपने जीवन की नई गति, नई स्फूर्ति और नया बल पाना चाहते हैं। इसी के लिये यह वर्ष की कल्पना है।

एक ही चैत के हम दो टुकड़े कर देते हैं। आधे चैत से ही हमारा यह साल चला है। छोड़ते हुए हमारे मन में विषाद का, मोह का

उदय नहीं हुआ। अब जिस अगले आधे में प्रकाश है, मधुर और शीतल चांदनी है, उसे हम नये साल में लेकर आगे बढ़ते हैं। आज प्रतिपदा है। आज चन्द्रमा की एक भी किरण हमें नहीं मिलेगी। फिर भी आज ही हम यह वर्षोत्सव मनाने चले हैं। हम जानते हैं, इस अन्धेरे के आगे ही प्रकाश प्रकट हो पड़ेगा। इसी श्रद्धा को लेकर हमने इस मधु-मास का खण्डी-करण किया है। आज का दिन अखण्ड को, अनन्त को, अपरिमित को मुट्ठी में लेकर देखने का है। अपने को तटस्थ करके काल से आज हमें यह कहना है ठहरो, रुको तो! हथेली पर उठा कर आज हम तुम्हारी तोल करना चाहते हैं।

—श्री सियाराम शरण गुप्त
('झूठ सच' से)

(२)

लोहार की एक

पौ फटने की खुशी में संसार के सारे मुर्गे अपना गला फाड़ कर चुप हो चुके थे। छोटी चिड़ियां खुली हुई खिड़कियों से झांक कर सोने वालों को धिक्कार रही थीं।

जागने की कोशिश में उसने भी कुछ करवटें बदल डालीं। पर दो करवटों के बीच में उसकी आंखें फिर लग गईं। उसने स्वप्न में क्या देखा कि ब्रह्मा जी अपने कमंडल में हिमालय पर्वत को रख कर हिला रहे हैं। वह उठ बैठा। उसने देखा कि उसके कमरे का दरवाज़ा हाथों से, लकड़ियों से, जूतों से पीटा जारहा है।

उसने घबरा कर कमरा खोल दिया। बाहर बोर्डिंग के छुटे हुए शैतानों का एक दल खड़ा था। उनमें से एक ने कहा—'अजी तुम अभी सो रहे हो! आज हम लोगों की पिकनिक पार्टी है। तुम्हें भी चलना होगा।

अपने दुर्भाग्य से उसने 'नहीं' करना नहीं सीखा था। सात बजे वे सब रवाना हो गये।

पिकनिक का थोड़ा आनन्द उसे चलने के पहले पहले ही प्राप्त हो गया। जब प्रायः सभी ने उसे अपनी एक-न-एक चीज़ हवाले की। मुरारी ने अपना ओवर कोट उसके कन्धों पर डाल दिया कि सन्ध्या समय जरूरत पड़ेगी तो ले लूँगा। मोहन ने दो मोटे उपन्यास उसकी बग़ल में दबा दिये कि इच्छा होगी तो वहीं लेटकर पढ़ूँगा। माधो ने अपने डंबल उसे पकड़ा दिये कि नदी के किनारे खुली हवा में कसरत करूँगा।

माल गाड़ी सा लदा हुआ और इन्जन सा हाँफता हुआ वह निर्दिष्ट स्थान पर पहुँचा। दो पहर तक खाना तैयार हुआ और लोग खाने बैठे।

खाने के पहले वह हाथ-पाँव धोने नदी के किनारे गया था। लौट कर देखता है कि उसकी पत्तल से बुरमे का लड्डू गायब है और दही बड़ों के नाम पर सकोरे में थोड़ा मठा बच रहा है।

लम्बी सांस लेकर वह खाने बैठा। खाने के बाद लोगों ने उसकी क़मीज़ में, जो उसने उतार कर टांग दी थी, हाथ पोंछे। वह लेटा था कि उसकी नाक पर सुंघनी मुरकी जाने लगी। अपनी नाराज़गी प्रकट करने के लिये वह उनकी ओर पीठ फेर कर बैठा तो उसकी पीठ पर तबला बजने लगा।

बेचारा सब से अलग पत्थर पर जा बैठा। उसका मन खट्टा हो गया था। उसकी आज तक की आप बीती उसकी आंखों के सामने गुज़रने लगी।

बोर्डिंग में उसका पहला दिन भी खैरियत से न बीता था— उसने अपने बादामी जूतों पर काली पालिश पुती हुई पाई थी।

फिर तो वह रोज़ ही ऐसी हरकतों का शिकार बनता। बाहर से साँकल चढ़ा कर वह घण्टों अपने कमरे में कैद कर दिया जाता। बोर्डिंग भर में जितने केले और संतरे खर्च होते उनके छिलके उसके दरवाजे पर फैंके जाते।

एक बार उसका आधा टीन घी भी गायब हो गया और उसके स्थान पर चावलों का मांड भरा मिला। एक रोज़ वह पानी पीने के लिए मुंह के पास लोटा ले गया था कि उसमें से एक जीता जागता मेंढक उछल पड़ा। लोटा हाथ से छूट कर उसके पैर पर गिरा और वह अरसे तक लँगड़ाता रहा।

एक समय आता है जब चन्दन भी आग उगलता है। वह दस क़दम भी न चला होगा कि चीख़ उठा। जब तक लोग उसके पास दौड़कर आये तब तक वह लड़खड़ा कर गिर पड़ा। चारों ओर से क्या है, 'क्या है, क्या है ?' की आवाज आने लगी। उसने हाथ मार कर कहा — मुझे सांप ने काट खाया है।

यह कैसा रंग में भंग ! जैसे सबको काठ मार गया। शहर से सात मील का फासला और पगडंडियों का रास्ता ! कोई होशियार डाक्टर मिलता तो बेचारे की जान न जाती। लेकिन डाक्टर बिना शहर गये कहां मिलेंगे ?

मुरारी के भी हाथ पांव फूल गये थे। पर उसने शीघ्र अपने को सम्भाला। पास के गाँव से दो रुपये में एक खाट मोल लाया। चारों लड़के इसी खाट पर माधो को उठाये ले दौड़े। बाकी दस बारह लड़के साथ साथ दौड़ चले। पहली चौकड़ी के थक जाने पर दूसरी चौकड़ी खाट को उठा लेती। यों ही कन्धे बदलते वे आगे चले जा रहे थे।

उसका वज़न भी कम नहीं था। जो उसे उठाये दौड़ रहे थे, उनका बुरा हाल था। पसीने से तर तो सभी हो रहे थे, पर कुछ लड़के अपना पेट पकड़ कर हांफ रहे थे। रास्ते में जो मिलता, वही उन्हें और तेज़ दौड़ने की सलाह देता।

माधो भी कभी दम न लेने देता था। वह खाट पर लेटा बराबर कँहरता रहा। कभी-कभी उठ बैठता, पागलों सा हाथ पटक देता। उस समय उसकी खाट जिनके सिर पर होती, वे बेचारे त्राहि त्राहि पुकारते। उन्हें इतना भी समय नहीं था कि रुक कर ज़रा सर सहला लेते।

अपनी विक्षिप्तता में वह प्रायः चिल्ला उठता कि मेरी जान जा रही है और तुम लोग चहल क़दमी कर रहे हो। कभी कभी वह

मार भी बैठता। उसके दाहिने हाथ की ओर खाट उठानेवालों में लड़के झिझकते थे, पर लाचारी थी, उठाना पड़ता।

खैर घण्टा भर की सरपट दौड़ के बाद शहर की बिजलियां दिखाई पड़ने लगीं। शहर में घुसते ही बोर्डिंग था और पास ही था सिविल सर्जन का बंगला।

लड़कों ने सिविल सर्जन के बंगले पर उसकी खाट उतारी। थकावट के कारण वह मृतप्राय हो रहे थे। जिसे जहाँ जगह मिली वहीं गिरकर बैठा रहा। उनकी साँस धौंकनी की तरह चल रही थी। मुंह से सीधे बात नहीं निकलती थी।

खैर साहब को सूचना मिली तो खाना छोड़ कर बाहर आये। उन्हें देख कर माधो उठ बैठा। साहब ने पूछा—"कहां पर काटा है, साँप ने।

माधो ने निहायत सादगी से कहा—"कैसा सांप ?"

"तुम्हें सांप ने काटा है न ?" साहब ने पूछा।

"नहीं तो, कौन कहता है ?" माधो ने विस्मय से पूछा। और साहब ने उसके साथियों की ओर इशारा किया। उसने कहा—"ये सब शैतान हैं। आपको बना रहे हैं। मैं थक कर इस खाट पर सो गया था, शरारत से ये मुझे ले भागे।"

यह सुनकर साहब उन शैतानों को घूरने लगा, मानो उन्हें आंखों से कच्चा ही खाने की कोशिश कर रहा हो। माधो का वहां रहना बेकार था, वह चलता हुआ, और उसके यार लोग साहब से निपटते रहे।

उस दिन से लेकर फिर उसे किसी ने नहीं छेड़ा। उसके साथी अब उसे बड़े आदर से देखने लगे।

—श्री अन्नपूर्णानन्द वर्मा

(३)

शुक और कपोत

शुक—मुझे इस बात का गर्व है कि तुम्हारे जैसे सहयोगी मिले हैं।

कपोत—सहयोगी कैसे ?

शुक—यही कि तुम भी पालतू और मैं भी।

कपोत—हां, तुम भी पालतू और मैं भी !

शुक—तो क्या तुम यह व्यक्त कर रहे हो कि इतना होने पर भी हम सहयोगी नहीं ?

कपोत—भाई, तुम स्वर्ण-पिंजर में रहने वाले, मैं काबुक का बन्दी। भला हममें समता कैसी !

शुक—अः, अपने को काबुक का बन्दी कहकर तुम मेरी हंसी उड़ाते हो। बन्दी तो मैं हूँ जो सोने घर में रहने पर भी मूड़ पटक पटक कर इसी में मर जाता हूँ। और तुम, आसमान में चक्कर काटते हो। उन्मुक्त पवन सेवन करते हो। जाड़े के निर्मल आकाश में ओले की तरह कलाबाजी करते हुए नीचे आते हो। और मैं—मैं भी विहग हूँ, पर कैसी नृशंसता की हाथ—इसी बित्ते भर पिंजड़े में फड़ फड़ा कर रह जाता हूँ !

कपोत—भाई, अपने भाग्य सराहो। व्यर्थ आकाश में घूम कर क्या करते ? अनन्त काल से अण्ड-पिण्ड भी तो इसमें मड़रा मड़रा कर इसकी थाह नहीं पाते और अन्त को निराशा से गिरकर या जलकर अपना अस्तित्व मिटा देते हैं। फिर भला हम तुम बेचारे कभी आकाश की थाह पा सकते हैं ? अच्छा है जो तुम यहां सोने के अड्डे पर जमे तो हो !

शुक—हाय, तुम्हारी स्थिति मेरी जैसी नहीं, अन्यथा तुम ऐसी बात कभी न कहते। तुम उन्मुक्त पवन पा सकते हो, तभी दर्शन सूझता है।

कपोत—भला मेरी स्थिति तुम्हारे जैसी कभी हो सकती है? मैं मनुष्य की भाषा कब सीख सकता हूँ?

शुक—तो क्या नर-वाणी सीखने ही के कारण मेरी यह दुर्गति है?

कपोत—और नहीं तो क्या! जो दूसरे की भाषा की नकल कर लेने का नाज रखता है, वही इस तरह बन्दी बनता है।

शुक—लेकिन इस वेदना-पूर्ण कहानी का सबसे करुण अंश तो यह है कि मैं नर-भाषा सीख लेता हूँ तो भी मनुष्य मेरी दुःख गाथा पर जरा भी ध्यान नहीं देता।

कपोत—हां ध्यान कैसे दे? तुमने जो कुछ उससे सीखा है वह रटन्त विद्या है। उसका तुम अर्थ नहीं जानते और जो तुम्हारी भाषा है, उससे तुम्हारे पालक निर्बोध हैं। इससे, चाहे मिर्चा खिला-कर तुम्हारी जबान ही क्यों न जलाई जाय, और उस जलन की वेदना ही क्यों न तुम उसकी रटी-वाणी, दुहराने के मिस, प्रकट करो, किन्तु वह कहता है कि वाह मिर्च खाकर गंगाराम क्या अच्छा पढ़ रहा है! और जब तुम अपनी भाषा में हाय तोबा करने लगते हो तब वह कहता है कि कमबख्त फिर टें टें करने लगा।

शुक—बड़ी विषम स्थिति है!

कपोत—तुम लोगों को इस बात का गर्व है न कि हम दूसरों की भाषा तद्वत् सीख लेते हैं?

शुक—यह एक ऐसा आरोप है, कि जिसकी मैं सफाई नहीं दे सकता।

कपोत--तुम्हें मालूम नहीं कि मनुष्य को तुम से कैसी घृणा है ? तुम पर कितना रोष, कितना अविश्वास है ? तो भी तुमने अपने में ऐसी बात पैदा कर ली है और उस पर फूले नहीं समाते। भोगो अपनी करनी का फल ?

शुक—भला मनुष्य का हमने क्या बिगाड़ा है कि वह हम से इतना बैर रखता है ?

कपोत—क्यों, तुम उसके खेत के खेत साफ कर डालते हो ? बाग़ के बाग़ चट कर जाते हो ? इतने दिन पालित होने पर भी जरा छूटे कि चढ़े डाल पर। यहां तक कि तोताचश्म उनकी भाषा में बेवफ़ाई के लिये मुहाविरा हो चुका है। तो भी .....

शुक—भाई, और न कहो, खून उबलने लगता है।

कपोत—भला पराधीन का खून क्या उबलेगा, कहो कि जी जलने लगता है !

शुक—हाय ! सच है यदि खून में वह जोश होता तो बन्दी क्यों बनता ?

कपोत—बन्दी ही नहीं, सच पूछो तो मनुष्य तुम से बुरी तरह बदला लेता है। दुनिया देखती है कि तुम सोने के घर में रहते हो, दूध-भात, मेवा-मिसरी खाते हो। किन्तु इससे क्या ? यह रहन सहन यह आहार-विहार तुम्हारे लिये बिल्कुल पराया है। इसी दुःख से तुम जले जाते हो।

शुक—अः ! मर जाना अच्छा !

कपोत—हां, अगर तुम मनुष्य के गुलेलों का निशाना बनते तो कहीं अच्छा ! यह सारे जन्म का कष्ट तो न भोगना पड़ता ! परन्तु तुम तो चले पक्षियों की श्रेणी से कदम बढ़ाने।

शुक—इसका क्या अर्थ ?

कपोत—यही कि पक्षियों की जीवन यात्रा में दूसरे की वाणी सीखने की जरूरत ? यदि तुम ऐसे न होते तो आज अपने शत्रु के चंगुल में क्यों पड़ते ? क्यों उसके शौक पूरा करने के खिलौने बनते, जो तुम्हारी जाति का बैरी है ?

इतना ही नहीं, खिलौने भी तुमसे अच्छे, वे एक ठिकाने तो धरे रहते हैं। तुम्हें तो तमाशा बना कर मनुष्य अपने बदले लेने की मीठी चाल का नतीजा—तुम्हारी हसरत भरी हालत–दुनियां को दिखलाता है। ऊपर से तुम उसी की वाणी सुनाकर उसकी मनस्तुष्टि करते जाते हो ।

शुक—ओफ्, तो क्या उसे दोहरा आनन्द मिलता है ?

कपोत—बल्कि तेहरा—तुम में उसकी भाषा रट लेने का माद्दा है, इस पर वह थोड़े ही ध्यान देता है। उसे तो गर्व इस बात का है कि वह सुग्गे को रटा सकता है। इसे वह अपने मस्तिष्क का कौशल, बुद्धि चमत्कार मानकर इस पर नाज करता है।

शुक—भाई, और न सुनाओ !

कपोत—तुमने प्रसंग ही ऐसा छेड़ दिया। अब कुछ और सुन लो। इतने पर भी उनकी घृणा की मात्रा तुम्हारे लिये, और अधिक होती है। "तोता रटन्त" उनका मुहाविरा ही है, जिसका मतलब है—किसी बात का अर्थ जाने बिना उसे कण्ठस्थ कर लेना।

जो सुग्गे की तरह पशु पक्षी होगा वही बिना भाव समझे रट लेने की हीनता अंगीकार करेगा।

शुक—आः, कैसी विषमसमस्या है ! मारने वालों के हाथ जीवन पड़ गया। क्या किया जाय ?

कपोत—फल कतरने में पटु तुम्हारी पैनी ठोर भी तो इन सोने के छड़ों के आगे बेकार है।

शुक—आः, तुम्हारी इस उक्ति में विष भरा है।

कपोत—नहीं, इसमें चिरायते की कड़वाहट है।

शुक—कैसे ?

कपोत—ऐसे कि, मैं तुम पर कोई व्यंग तो करता नहीं, मुझे तो यह देख कर तरस आता है कि इस स्थिति में भी तुम जीवन की—जीवन क्यों, शरीरयापन की—लिप्सा नहीं छोड़ सकते। अतः मैं तुम्हारे घट में यह उतारना चाहता हूँ कि अब स्वर्ण-पिंजर से नहीं, बल्कि तन-पिंजर से छुटकारा पाने पर ही तुम्हें नया जीवन मिल सकता है।

शुक—अच्छा तो उस सहानुभूति से ऐसी बातें कर रहे हो ?

कपोत—सहानुभूति से नहीं बल्कि दया से।

शुक—क्यों, तुम भी तो मेरे ही जैसे बन्दी हो ? सो एक बन्दी दूसरे पर दया कैसे दिखा सकता है ? भाई गलती सुधारो—सहानुभूति कहो।

कपोत—बस तुम इसी नुक्ता-चीनी में रहो। अपनी स्वतन्त्र विचार शक्ति तो तुमने जाने कब की गंवादी है। भला मैं बन्दी कैसे ? मनुष्य के हाथ हमने अपनी आत्मा नहीं बेच दी। यह तो विनिमय है। वह हमें सांप, न्योले, बिल्ली बल्कि गगनचारी बाज, बहरी से बचाता है, हमारी नस्ल सुधारता है, उसे खाता नहीं। करकंट चुंगने वाले को करकल चुंगाता है। हम बदले में उसके धावन बनते हैं—विषम से विषम स्थिति में उसके पत्र अपनी जान पर खेल के, पहुँचा देते हैं। उसे गिरह बाजी दिखाते हैं और स्वच्छन्द हो कर जहां तहां घूमते हैं और, उससे पुनः आ मिलते हैं। हमारा स्वाभाविक गुटकना ही उसे आनन्दित करता है। भला तुम्हारी और हमारी स्थिति की क्या तुलना ?

शुक—हा, दैव !

कपोत—फिर वही "हा दैव ?" "हा पौरुष" कहो।

शुक—पौरुष होता तो दैव को क्यों याद करते ?

कपोत—बस एक क्षण के पौरुष से तुम जन्म भर की कसर निकाल सकते हो।

शुक—बड़ी कठिन बात है !

कपोत—तब मालूम पड़ता है, तुम्हें इस स्थिति से कष्ट नहीं। तुम्हारा जिगर-सोज-नाला, विडम्बना मात्र है।

—श्री रामकृष्ण दास

['संलाप' से]

(४)

दो रास्ते

[औरंगजेब ने मारवाड़ के राजा जसवन्त सिंह को चालाकी से मरवा डाला तो उसकी विधवा रानी मुगलों की शक्ति से मोर्चा लेने की तैयारी करने लगी। मारवाड़ के सेनापति दुर्गादास ने उसकी इस तैयारी को सफल बनाकर औरंगजेब की सेना के दान्त खट्टे कर दिये। नीचे दिये दृश्य में रानी गांव-वालों को शत्रु की सेना से टक्कर लेने के लिए उभारती है।]

स्थान—मारवाड़ का पहाड़ी स्थान।

समय—प्रातःकाल

(ग्रामवासी प्रवेश करते हैं और रानी के दांई-बांई भारी भीड़ लगी है।)

ग्रामवासी—जय रानी माई की जय !

एक ग्रामवासी—महारानी के लिए जगह दो।

रानी—(पास के एक ऊंचे पत्थर पर खड़े होकर, ग्रामवासियो, सैनिको, पुत्रो—

दूसरा ग्रामवासी—हमें सुन नहीं पड़ता। हम सुन नहीं पाते।

रानी—सुन पड़ेगा, चुप होकर सुनो।

तीसरा ग्रामवासी—सब लोग चुप होकर, मन लगाकर सुनो। चुप......

रानी—सुनो- आज मैं क्यों आई हूं—सुनो-ग्रामवासियों में कोलाहल)

ग्रामवासी—चुप......सुनो तो......सुनने भी दो......

रानी—मारवाड़ के रहने वालो, पहले मैं अपना परिचय देती हूँ। मैं जसवन्त सिंह की रानी हूँ। बादशाह औरंगजेब की चालाकी से अफगानिस्तान में मेरे स्वामी की मौत हुई। मेरे बड़े लड़के को विष दिया गया और मेरा छोटा लड़का तुम्हारा होनहार राजा—अजित सिंह औरंगजेब की आँखों का काँटा होने के कारण एक एकान्त स्थान में छिपाकर रखा गया है। और मैं—तुम्हारी रानी—राह-राह मारी-मारी फिर रही हूँ।

(ग्रामवासियों का कोलाहल)

एक ग्रामवासी—तो हम क्या कर सकते हैं ?

दूसरा ग्रामवासी—किन्तु बादशाह के ऐसे घोर अत्याचार को रोकने के लिये कुछ न कुछ उपाय करना चाहिये।

रानी—मैं आज अपना ही दुःख जताने के लिए तुम्हारे पास नहीं आई हूँ। मैं आई हूँ आज सुन्दर मारवाड़ के लिए तुम से सहायता मांगने। बादशाह एक लाख से अधिक सेना लेकर मारवाड़ पर चढ़ाई किये आ रहा है। तुम लोग मारवाड़ की संतान हो, तुम राजपूत हो, तुम वीर कहाकर प्रसिद्ध हो। तुम क्या निश्चिन्त होकर खड़े-खड़े अपनी जन्मभूमि को पददलित होते, लुटते और मिटते देख सकोगे ?

एक ग्रामवासी—एक लाख से अधिक सेना ? हाय अभागे मारवाड़ !

दूसरा ग्रामवासी—सेनापति अगर झालावाड़ पर चढ़ाई न करते तो यह आफत न आती।

तीसरा ग्रामवासी—हां, सोते हुए शेर को जगाना यही कहलाता है।

चौथा ग्रामवासी—एक लाख मुग़ल सेना से युद्ध करना निर्बल मारवाड़ के लिए सम्भव ही नहीं।

पांचवां ग्रामवासी—किसी तरह नहीं।

रानी—सम्भव नहीं है? सम्भव नहीं है? तो तुम यहां चुप चाप खड़े खड़े देखा करोगे कि तुम को खदेड़कर, नष्ट कर मुगलों की सेना इस तुम्हारी स्वर्ण 'भूमि पर' अधिकार कर ले? हा, धिक्कार है। तुम चुपचाप अपना देश शत्रुओं को सौंप दोगे? तुम राजपूत हो! तुम क्षत्रिय हो! फिर भी कहते हो कि सम्भव नहीं है? जसवन्तसिंह अगर जीवित होते, तो उनके सामने यह कहने का साहस तुम्हें होता? उनके लिए तुम सब प्राण देने को तैयार थे। जसवन्तसिंह की एक दृष्टि मे तुम्हारा खून गर्म हो उठता था, उनकी एक दृष्टि से दस हज़ार तलवारें म्यान से खिंच जाती थीं। उनको घोड़े पर सवार देखते ही तुम्हारी 'जयध्वनि' आकाश में गूंज उठती थी। मैं स्त्री हूं। मै उनकी अनाथ स्त्री हूं। मैं आज कंगाले से भी बदतर हो रही हूँ। मेरी बात तुम क्यों सुनोगे? मैं तो अब तुम्हारी रानी नहीं.......

सब ग्रामवासी—आप हमारी महारानी हैं। हम आप की बात सुनेंगे।

रानी—अच्छा, अगर सुनोगे तो अपने गांव और झोंपड़ों को छोड़ कर आओ। तलवार लो। उठो—इस उदासीनता को छोड़ो। एक बार दृढ़ होकर उठ खड़े हो ओ। उठो, जैसे तुरही के शब्द से सोता सिंह जाग उठता है। उठो, जैसे पुंगी की ध्वनि सुनकर सांप फुफकारा उठता है उठो—जैसे बिजली की कड़क से पहाड़ की गुफाओं में प्रतिध्वनि जग उठती है। जैसे तूफ़ान में समुद्र की भीषण लहरें उठती हैं। उठो—राजस्थान जाने, औरंगजेब जाने कि तुम्हारी वीरता गुप्त थी, लुप्त नहीं हुई थी!

सब ग्रामवासी—महारानी, हम युद्ध करेंगे। किन्तु इस युद्ध में जीतने की आशा नहीं है। मरना ही हाथ लगेगा!

रानी—मरना? मुझे, एक दिन क्या मरना न होगा? बिछौने पर पड़े-पड़े दुर्गति से मरना सुख की मौत नहीं है। अपनी इच्छा से देश के लिए, औरों के लिए कर्त्तव्य के लिये मरना ही सुख की नींद है!

सब ग्रामवासी—हम लड़ेंगे महारानी, आप जहां ले जायेंगी, वहां चलेंगे।

रानी—यही तो तुम्हारे योग्य बात है। सुनो, मैं किसी को उसकी इच्छा के विरुद्ध नहीं बुलाती। अगर किसी को अपनी जन्मभूमि का ख्याल हो, यदि किसी को अपने धर्म पर भक्ति हो, यदि कोई स्वाधीनता के लिए प्राण देने को तैयार हो, तो वह आवे। वह अकेला ही एक सौ के बराबर है। कच्चे दिल के, दुविधा में पड़े हुए आदमियों को मैं नहीं चाहती। मुझे एकाग्र और दृढ़ प्रतिज्ञा वाले आदमी चाहियें। दो रास्ते हैं, पसन्द कर लो। एक तरफ विलास आमोद, आराम, और भोग हैं, दूसरी तरफ मेहनत, अनाहार, दरिद्रता, और दुःख है। एक ओर संसार, घर बार और शान्ति है, दूसरी ओर देश के प्रति कर्त्तव्य है। पसन्द कर लो।

सब ग्रामवासी—हम कर्त्तव्यपालन को ही पसन्द करते हैं।

रानी—अच्छी बात है, तो अब सब राठौर एक झण्डे के नीचे खड़े हो जाओ। आपस के छोटे-बड़े सब झगड़ों को भूल जाओ। एक बार सब मिलकर पुकारो—जननी जन्मभूमि की जय।

सब ग्रामवासी—जननी जन्मभूमि की जय!

('राय' के 'दुर्गादास' नाटक से)

श्री रूपनारायण पाण्डेय द्वारा अनुवादित

(५)

पशु-पक्षियों की 'पार्लियामेंट'

निर्जन जंगल के विशाल मैदान में, आधी रात के आध घंटे बाद पशु-पक्षियों की एक महती सभा बैठी, जिसमें सब प्रकार के पशुपक्षियों के प्रतिनिधि शामिल थे। दर्शक रूप से भी बहुत से आता विद्यमान थे। सभापति का आसन श्रीमान् वीरवर केसरीसिंह जी ने सुशोभित किया था। जिस समय सभापति महाशय, मिस्टर चीताराम, पं. वनरामल और लाला लकड़बग्घा मल के साथ सभा मण्डप में पधारे, उस समय प्रतिनिधियों के हर्ष का ठिकाना न रहा! सबने अपनी-अपनी भाषा में उनका एक साथ स्वागत किया। रेंकने भौंकने, चीखने, चिंघाड़ने, रंभाने, चलचलाने, मिनमिनाने, चहचहाने, आदि की सम्मिलित ध्वनि ने युगान्तर उपस्थित कर दिया। सबसे पहले श्रीमती लोमड़ी, श्रीमती बिल्ली और श्रीमती कुक्कुरी देवी ने स्वागत गान गाया। फिर मिस्टर भेड़ियाराम खड़े हुए और आपने आध घण्टे में सारा स्वागत भाषण पढ़ डाला। सभापति महोदय ने उपस्थित प्रतिनिधियों का धन्यवाद देते हुए कहा—

"भाइयो, आज की सभा का उद्देश्य हजरत इन्सान से असहयोग करना है। इस दुष्ट के द्वारा, हम लोगों को जो घोर कष्ट पहुँचाया जाता है उससे हम बहुत दु:खी हैं। आत्मरक्षा के उपायों पर विचार न करना कायरता है। मैं अपना भाषण पीछे दूंगा, पहिले आप लोग निर्भय और नि:संकोच होकर अपने २ विचार प्रगट करें। देखिये, सभा में गड़बड़ी न होने पावे। विविध मत-सम्प्रदायों और सूरतशक्लों के प्रतिनिधियों की यह पहली 'पार्लियामेंट' है। अतएव एक को दूसरे के भावों का पूरा ध्यान रखना चाहिए। एक बात ध्यान

में और रहे। हम लोग आपस में भले ही मतभेद रक्खें, पर, इन्सान के मुकाबिले में सबको एक बन जाना चाहिए। अच्छा, अब श्रीमती गाय देवी अपना भाषण करेंगी।"

गौरवशीला गोमाता

श्रीमती गोमाता जी ने पूंछ हिलाकर रंभाते हुए कहा— "भाइयो, कैसे दुःख की बात है, मनुष्य मुझे पकड़कर अपने घरों में बांध लेते हैं। मेरे आगे कूड़ा—करकट फेंककर सारा दूध गटक जाते हैं। मेरी प्रिय सन्तान देखती ही रह जाती है! सब जानते हैं कि माता का दूध उसके बच्चों के लिए होता है; पर मेरा दूध दूसरों के लिए है।... ...मेरे पुत्र शीत–घाम की कुछ भी परवाह न कर घोर पुरुषार्थ करने के बाद कहीं रूखा—सूखा भूसा पाते हैं। इस घोर अन्याय का नाम मनुष्यों ने "परोपकार" और "गोरक्षा" रख छोड़ा है। बाज आई में इस 'परोपकार' से। मेरे खाने के लिये परमात्मा ने बहुत दिया है। मैं नहीं चाहती कि परोपकार के 'पोटले' ये इन्सान मेरी जाति पर और अधिक अन्याय करें।"

इस वक्तव्य का समर्थन भाषण पटु भैंस और विवेकशीला बकरी ने भी बड़े मर्मस्पर्शी शब्दों में किया और कहा—दर असल हमारे साथ घोर अन्याय होता है।

श्री देव गर्दभ जी

महाशयो, मेरी कथा न पूछिए, मेरे जीवन से तो मौत ही अच्छी है। रात दिन काम करना, पीठ पर डण्डे खाना, भूख से घबराना, बस, यही मेरी किस्मत में बदा है! इतना घोर पुरुषार्थ करने पर भी हजरत इन्सान मुझे बेवकूफ ही कहकर पुकारता है; कान पकड़कर झुलाता और डण्डे मारकर चलाता है। हे सभापति! मुझे इस

घोर दुःख से बचाइए; मै मर जाऊंगा; मुझे मनुष्य की 'यह परोपकारिता' नहीं चाहिए। सच समझिए, अगर मैं इतना परिश्रम व्याकरण पढ़ने में करता तो आज महामहोपाध्याय हो जाता। परन्तु सज्जनो, मेरा तो लोक बना न परलोक! इतना कह कर श्री गर्दभदेव जी का जी भर आया और आप बीच ही में बैठ गए!

कुंवर कुत्ता कुमार जी

सज्जनो, आप जानते हैं, मैं भाई भेड़िया का चचाजाद भाई हूं। परन्तु इन्सान के कुसंग ने मुझे परमुखापेक्षी और चापलूस बना दिया है। एक टुकड़े की खातिर मुझे उसकी अजहद खुशामद करनी पड़ती है। यहां तक कि मैं अपने सगोत्री भाइयों से भी प्रेम पूर्वक वर्तालाप नहीं करता, सदैव द्वेष दर्शाता रहता हूँ। तो भी मुझे पेट भर रोटी नहीं मिलती। हमारे कितने ही भाइयों ने, स्वामि-भक्ति के कारण इन्सान के लिए टुकड़ों और केवल टुकड़ों के लिए—अपने अमूल्य शरीर बलिदान कर दिये। परन्तु इस खुदगरज कौम को हमारे हाल पर तनिक भी तरस न आया! उसने मेरे विरुद्ध नाना प्रकार की किम्वदन्तियां गढ़ डालीं!! मेरा घोर अपमान किया!!

चाकरी को निन्दापूर्वक 'श्वान-वृत्ति' के नाम से पुकारा, और बुरी मौत को 'कुत्ते की मौत' कहा! क्या इसी का नाम कृतज्ञता है? क्या सच्ची सेवा का यही प्रशंसनीय फल है कि हम तो इन्सान के लिये प्राण तक दे दें, अपने कुनबे को भी त्याग दें, परन्तु हजरत इन्सान रोटी के टुकड़े तक से हमें महरूम रखें, और कभी कुछ खिला दें तो इस 'उपकार' पर फूले न समायें। मैं ऐसे नाशुकरे इन्सान पर लानत का प्रस्ताव पास करने की प्रार्थना करता हूँ।

भाई भेड़िया मल

उदार भाइयो, मुझे अपने चचेरे भाई कुत्ते की कष्ट-कथा सुनकर घोर दुःख हुआ। वास्तव में, अपने जातीय गौरव को भूलकर, भाइयों का साथ न देने वालों की, ऐसी ही दुर्गति होती है। निस्सन्देह कुत्ता हमारा भाई है। पर वह टुकड़ों की खातिर दूसरी कौम का गुलाम बन गया !

[नोट--यहां माननीय सभापति जी ने भाई भेड़ियामल को यह कहकर रोक दिया--तुम्हें अपनी शिकायतें पेश करनी चाहिए थीं। दूसरों के सम्बन्ध में, आक्षेपपूर्वक कुछ कहने या उनकी समालोचना करने का अधिकार तुम्हें नहीं दिया गया। यह सुन कर भाई भेड़ियामल उदास होकर बैठ गये। फिर हजरत हाथी खां को बोलने की आज्ञा मिली।]

हजरत हाथी खां

सज्जनो, हमने भी कम कारनामे नहीं दिखाये। पर अब नयी रोशनी वाले इन्सान द्वारा हमारा जो निरादर किया जाता है, उसे हम कह नहीं सकते। भला कुछ ठिकाना है ! क्या इन्सान को अक्ल इस-लिए मिली है कि वह 'अंकुश' के रूप में, हमारे भारी भाल पर आक्र-मण करता रहे। इतने बड़े हम गजराजों के लिए यह शर्म की बात है ! इस लोकतन्त्र-शासन के युग में इस प्रकार अपमानित होना कोई पसन्द न करेगा। शिकार के समय हम अपनी छाती अड़ा देते हैं। पर, अपने ऊपर बैठे हुए इन्सान तक कोई चोट नहीं आने देते। गहरी नदी में खुद घुस जाते हैं, पर अपने शासक सवार पर, छींटे भी नहीं पड़ने देते। जरा पुराना इतिहास उठाकर तो पढ़ो, हमारे कैसे कैसे कारनामे हैं। आजकल के राजाओं ने हमें जनाना बना दिया है। हम भी देशी राजाओं की तरह, बस, कभी-कभी

जुलूसों की शोभा बढ़ाने वाले दिखावटी समझे जाने लगे ! हमारा सब शौर्य नष्ट किया जा रहा है। इतना बड़ा महायुद्ध हो गया, पर हमारा उस में नाम तक नहीं ! इससे अधिक अपमान हमारा क्या होगा ? अगर मेरा बस चले तो, मैं इस 'अक्ल के पुतले' इन्सान की सारी समझ ठीक कर दूं।

भाइयो, साहस करो, निरंकुश होते हुए भी आप एक अंकुश के सहारे नाच रहे हैं, यह दुःख की बात है।

ठाकुर घोड़ा सिंह

भाइयो और भाभियो, हमारी जाति ने इन्सान का अपूर्व हित किया है। जिस समय न 'मोटर' थी न 'साइकल' और न हवाई जहाज थे, उस समय हम ही इन्सान को सर्वत्र घुमाते फिरते थे। हमारी कदर भी बहुत होती थी। परन्तु जब से ये 'पों पों' चली हैं, तब से हमारी बड़ी बेकदरी हो गयी है। जिन अस्तबलों में पहले हम हर्ष से हिन हिनाया करते थे, आज उन में 'पेट्रोलियम' की दुर्गन्ध आती है। ज्यों ही मनुष्य 'मोटर कार' खरीदने योग्य होता है, त्यों ही वह उसे खरीद कर हमें जवाब दे देता है ! यह संक्रामक रोग बराबर बढ़ रहा है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि थोड़े ही दिनों में हमारी कोई बात भी न पूछेगा, हम लोग 'किराये के टट्टू' से अधिक अपनी पोजीशन न रख सकेंगे। आप जानते हैं 'टट्टू' नामधारी हमारे लघु भ्राताओं की कितनी दुर्गति है ? उन से बोझ ढुलवाया जाता है, कूड़ा उठवाया जाता है, पाखाना फिंकवाया जाता है, इक्कों में जोत-जोत कर उनके कमर कन्धों पर जख्म कर दिये जाते हैं। भले ही मक्खियां भिन भिनाती रहें, पर, हजरत इन्सान को इससे क्या, क्या यह हमारे उपकारों के प्रति घोर कृतघ्नता नहीं है ? क्या उदार-चेता वीर-शिरोमणि 'चेतक' के कुल की यह दुर्दशा होनी चाहिये ? भाइयो, भावी आपत्ति का अभी से इलाज करो !

चौधरी उष्ट्रसिंह

भाइयो, क्या कहें इन्सान का बोझ ढोते-ढोते मरे जाते हैं, गाड़ियां खींचते खींचते अक्ल हैरान है। जिस मरु भूमि में, हमारे प्रतिनिधि भाइयों में से कोई पसन्द न करेगा, उसमें हमें भभकती भूभल पर चलना पड़ता है। अगर वहां हम न हों तो, इन्सान की सारी अक्ल ठिकाने आ जाय। परन्तु तो भी हमारे चारे का कोई प्रबन्ध नहीं। स्वयं पत्ती तोड़ना और पेट भरना। काम तो लिया जाय पर खाना न दिया जाय, यह कहां का इन्साफ है? हमें मनुष्य की दयालुता नहीं चाहिए, हम तो उस के आश्रय के बिना ही अच्छे हैं।

इसके बाद सभापति श्री केसरी सिंह जी ने कहा—अब दूसरे वर्ग के प्रतिनिधि बोलेंगे। पहिले पक्षियों की 'स्पीच' होगी फिर बिल-वासियों को अवसर दिया जायेगा।

मि० तोताराम

सज्जनो, इन्सान कहता है कि, मैं प्यार का पुतला हूँ, गुणों का ग्राहक हूँ। परन्तु यह सब उसका ढोंग है। आप जानते हैं, मेरी जाति के लोग बातूनी ज्यादा होते हैं, खूब मीठी मीठी बातें बनाते हैं। बस, इसीलिए हजरत इन्सान ने अपने कनरसियापन के कारण, 'अहिंसा' के नाम पर, हमें पिंजड़े में बन्द करना शुरू कर दिया! देखिये, मेरे भाइयों का पिंजरबद्ध हो कर सारा जीवन नष्ट हो गया! वे नहीं जानते कि स्वतन्त्र वायुमण्डल में सांस लेना कैसा होता है? हमारा स्वातन्त्र्य और स्वास्थ्य नष्ट करके मनुष्य कहता है—मैंने पक्षियों की रक्षा की है। उन को दाना खिलाया और बचाया है!! मैं परोपकार का पुंज और अहिंसा का अवतार हूँ!!! परन्तु भाइयो, जानते है इस "परोपकार" पर जो हमें नष्ट-भ्रष्ट करके किया जाता है?

परमात्मा जमीन पर रेंगने वाली चींटी को भी खाना देता है, तो क्या हम व्योम विहारी लोग भूखों मर जायेंगे। हम खुदगरज इन्सान की ऐसी बातों से बहुत तंग हैं।

श्रीमती मैना देवी जी ने इस व्याख्यान का समर्थन किया। और भी कई पक्षियों ने बोलने को पंख फड़फड़ाये, परन्तु सभापति जी ने उन्हें यह कह कर रोक दिया कि 'समय थोड़ा है, सुबह होने वाली है, अतः अब बिलवासी लोग कुछ कहें।'

पंडित चुहिया चरण जी

सज्जनो, मुझे अपनी जाति की दुर्दशा देख कर बड़ा दुःख है। आप जानते हैं कि प्रथम तो हमारे छोटे से शरीर पर पृथुलतुन्द श्री गणेश जी को सवार कर देवताओं ने घोर अन्याय किया है। खैर, उनकी बात भी जाने दीजीये। ये अहिंसाभिमानी मनुष्य हमारे नाश का नित नया उपाय सोचते रहते हैं। कभी पिंजड़ों में पकड़ कर हमारा नाश करते हैं, और कभी हमारे घरों में जहर की गोलियां पटकते हैं, जिससे हम मर जायें। "अशरफउलमखलूकात" इन्सान की इस हिमाकृत से, अब तक हमारे हजारों लाखों भाई, अपनी ऐहिक लीला समाप्त कर, परलोकवासी बन चुके हैं। ये भले मानस यह नहीं समझते कि 'प्लेग' आने की सब से प्रथम सूचना हम अपने शरीरों को बलि-वेदि पर चढ़ा कर देते हैं! हमारी इस सूचना से जो लोग प्लेग प्रभावित स्थान को छोड़ देते हैं, वे बच जाते हैं। इस उपकार का बदला हमें मिलता है--'सर्वनाश'! बलिहारी इस इन्सानियत की! और देखिये, आज चारों ओर 'सुधार-सुधार' और 'उन्नति-उन्नति' का ढोल पिट रहा है, परन्तु कोई यह नहीं सोचता कि इन तरक्कियों के तरानों का 'श्रीगणेश', कहां से हुआ। भाइयो, बताइये

यदि हम शिवरात्रि को, टंकारा के एक शिवालय की शिवमूर्ति पर, चावल चबाकर, मूलशंकर को उपदेश न देते तो महर्षि दयानन्द कहां से आते ? और भारतोद्धार कौन करता ? इन सब उपकारों का बदला इन्सान की ओर से मिलता है —'सर्वनाश', कैसे दुःख और परिताप की बात है !

वाचाल बन्दर और बीबी बिल्ली

दोनों ने एक स्वर से कहा कि हमारी राय में, हमारे पूर्व वक्ताओं ने हजरत इन्सान पर झूठे इलज़ाम लगाये हैं। हमें देखिये, हम स्वतन्त्रता पूर्वक चरते-विचरते हैं, और मनुष्य से खूब छीन-झपट कर खाते हैं, परन्तु हमारा कोई कुछ बिगाड़ नहीं सकता। बिल्ली ने कहा—मैं तो घरों के कोने-कोने में घुस जाती हूँ और खूब मौज उड़ाती हूँ। बन्दर बोला-हनुमान बन कर गुड़धानी खाना और गुर्राना हमारा काम है। बात वास्तव में यह है कि इन्सान से बाजी मारने के लिये चातुर्य की ज़रूरत है, जो जितना ही सीधा-सादा होता है, उतना ही पिटता है। महाशयो, हमें इन्सान से कोई शिकायत नहीं।

सभापति का भाषण

इसके बाद सभापति श्री केसरीसिंह का अन्तिम भाषण हुआ। आपने कहा—

भाइयो, मैंने सब व्याख्यान ध्यानपूर्वक सुने। वास्तव में इस 'अशरफ-उल-मख़लू कात' कहे जाने वाले इन्सान ने हम लोगों की नाक में दम कर रक्खा है। आप लोगों की कष्ट-कथा सुन कर, मेरे दुःख का ठिकाना नहीं रहा। आप यह न समझें कि मेरी जाति के लोग पशुपति परिवार के होने से सुखी हैं। हमारी जाति पर भी इन्सान का घोर अन्याय होता है। हमें तो वह देख ही नहीं सकता, खबर लगते ही

मारे गोलियों के हमें हलाक कर दिया जाता है। हमें कठहरों में बन्द कर के हमारी स्वतन्त्रता छीन ली जाती है। किसी समय हम सारे देश में आनन्द से चरते – विचरते थे, पर, अब तो वेदज्ञों की तरह हमारे परिवार के लोगभी केवल कहीं कहीं दिखाई देते हैं। इन्सान की जितनी शत्रुता हमारे वंश से है, उतनी किसी से नहीं। अभी आपने हज़रत बन्दर और बीबी बिल्ली के व्याख्यान सुने, उन्होंने इन्सान की हिमायत की है, पर इन भुले भाई और भटकी बहिन को यह नहीं खबर कि उचक्कापन करना या छीना-झपटी से काम लेना पशु परिवार की वंश परम्परा के प्रतिकूल है। इसके लिये मनुष्यों के 'राष्ट्र' नाम धारी समुदाय ही बहुत हैं। क्या हज़रत बन्दर कलन्दरों द्वारा लकड़ी के बल नहीं नचाये जाते ? क्या उन्हें पेट दिखा दिखा कर टुकड़े नहीं माँगने पड़ते ? इस घोर घृणित व्यवहार पर भी वह इन्सान का पक्ष लेते हैं, शर्म की बात है ! (चारों ओर से——शर्म ! शर्म !! शर्म !?!)

'बीबी बिल्ली का लुकछिप कर इन्सान के जूठे बर्तनों को चाट लेना, या दाव-घात से कुछ खा पी आना कोई गौरव की बात नहीं है। इसके लिए इन्हें अभिमान न करना चाहिये। अच्छा, मैंने अब खूब सोच लिया, और सब के उद्धार की एक बात सूझी है। महामहो-पाध्याय श्री गजराज जी और हम जैसे शक्तिसम्पन्न वीरवरों पर, काबू करना, हमारे अन्य बलहीन भाइयों को सताना, हमारे विनाश के लिए गोला–बारूद–तलवार–बन्दूक आदि बनाना, ऐसी बातें है जो अल्पशक्ति मनुष्य की बुद्धि के कारण ही हो रही हैं। बुद्धि न हो तो यह इन्सान साधारण कीट पतंगों से भी घटिया दरजे का बना रहे। सारे अनर्थों की जड़ मनुष्य की बुद्धि है। इसलिये मेरी सम्मति में इस महासभा से, यह प्रस्ताव पास करके "बुद्धा बन्द ताला" के

पास भेजना चाहिए कि वह इन्सान से अक्ल छीन कर, अपनी प्यारी प्रजा में सुख शांति स्थापित करे, और हम लोगों पर अन्याय न होने दे।

उपस्थित समुदाय ने गगनवेधी गर्जनापूर्वक सभापति के प्रस्ताव का समर्थन किया और वह सर्वसम्मति से पास हो गया। सभा बर्खास्त हुई और सब लोग अपने अपने घरों को सिधारे।

—हरिशंकर शर्मा

('चिड़ियाघर' से)

(६)

लेटर बॉक्स ?

स्कूल के मुख्य द्वार के सामने जो भारी, काली अजगर सी सड़क निकल गई है, उसके एक किनारे कुछ हट कर, संकुचित से तुम खड़े रहते हो। उत्सुक प्रेमी, विद्यालयों के छात्र, व्यवसायी और सरकारी दुनिया के दूत तुम्हारी अतृप्त क्षुधा-निवारण का प्रयत्न करते हैं। किन्तु तुम्हारी क्षुधा का अन्त नहीं।

रोज़ सुबह शाम खाकी वर्दी पहने, समय से कुछ मिनिट पीछे डाकघर का चपरासी तुम्हारा गृहद्वार खोल पत्रादि बटोर ले जाता है। कहां जाते हैं वे ?

लौह शृंखलाओं से जकड़ी धरती पर आंधी के वेग से जाती गाड़ी उन पत्रों को राजपूताना की मरुभूमि या बंगाल के शस्य-श्यामल खेत पार कर अथवा अनेक नद, पर्वत लांघ कर, दूर देश ले जाती होगी, जहां उत्सुक प्रेमी द्वार की ओर नेत्र लगाए प्रतीक्षा करते होंगे। अथवा विचित्र ढंग से पगड़ी बांधे मोटे मारवाड़ी वणिक रूई का मूल्य आंकने में व्यस्त होंगे। शायद सात समुद्र पार किसी एकाकी बन्धु या प्रेमी के पास तुम स्नेहसंदेश भेजते होगे !

अनेक हाथ स्नेह और आकांक्षा से भरे, दिन-भर तुम्हारे छोटे से पतले मुख में पत्र पहुँचाते हैं। छोटे छोटे हाथ किसी बालक के ! छोटे सुन्दर हाथ किन्हीं तरुण युवतियों के, जो उदासीनता का नाट्य करती हुई धीमे धीमे अपना संदेश तुम्हें सौंप निकल जाती हैं। कुरूप हाथ, सिगरेट जले हाथ, मेंहदी-रंजित हाथ, कठोर क्रूर हाथ, कोमल उदार हाथ—तुम्हारे समान हाथों की पहचान किसे है ?

एक दिन अनायास ही तुम्हारा द्वार चौपट खुला देखा। दीमक ने तुम्हारे पत्र खा डाले थे। तब तुम्हारी थाती की कितने मनुष्यों ने उत्सुक प्रतीक्षा की होगी। फिर तुम तारकोल से पोते गये, और नया चटख लाल रंग तुम्हारे शरीर पर चढ़ाया गया। यह चटख लाल रंग हमें पसन्द नहीं, यद्यपि यह क्रांति का रंग है। अब इस घोर गर्मी और फिर सावन की मुसलाधार वर्षा में तुम्हारा रंग हल्का पड़ जायेगा और फिर वही अनुभवी अलस भाव तुममें आ जावेगा।

तुम्हारे बराबर अनुभव है किसे? सबके हृदय का रहस्य तुम जानते हो--उस होस्टल के छात्रों की रुपए की कमी, प्रेमी की उन्मत्त कल्पना, वणिक की चाल, रुई का भाव! बड़े बड़े सरकारी रहस्य भी तुम्हें हृदयंगम हैं, और बड़े धर्मात्माओं की पोल भी!

ग्रीष्म के उग्र आतप और शिशिर के कठिन शीत में एकरस तुमने जगत का व्यापार इस सड़क के किनारे खड़े होकर देखा है। यदि तुम एक बार भी बोल देते?

—श्री प्रकाशचन्द्र गुप्त

('रेखाचित्र' से)

(७)

"दूध नहीं-आटे का खोल"

उपमन्यु का जन्म निर्धन घराने में हुआ था। अपनी विधवा माता का वह एक सहारा था। बालक होनहार था। एक दिन उसने अपने साथी बालकों के मुख से दूध-दही की बड़ी प्रशंसा सुनी। दूध के स्वाद और अमृत समान गुणों के विषय में उसने अक्सर अपने गुरु जी की मधुर बातें सुनी थीं। आज वह अपने कौतुहल को दबा न सका। घर आकर भोले उपमन्यु ने अपनी माता से दूध पीने के लिए हठ किया। माता की आत्मा कांप उठी। एक नई समस्या खड़ी हो गई। उसने चुपचाप कच्चा आटा पानी में घोलकर और उसमें मीठा मिलाकर उपमन्यु को पिला दिया। उपमन्यु ने समझा यही दूध है। अब वह भी दूसरे बच्चों के साथ दूध की चर्चाओं में शामिल होता। कभी कभी उपमन्यु को यह देखकर आश्चर्य और ग्लानि होती कि दूसरे लड़कों की जैसी कान्ति उसके मुख पर नहीं आई। वह भी उन्हीं की तरह रोज दूध पीता था, फिर इतना अन्तर क्यों ? उसे दूसरे लड़कों के घर जाकर उस दूध को देखने की इच्छा हुई जिसे पीकर वे इतने स्वस्थ और प्रसन्न थे।

एक दिन उपमन्यु अपने एक बाल-सहचर के घर गया। उसके साथी की माता ने दोनों बालकों को पीने के लिए दूध दिया। उपमन्यु पहली घूंट पीते ही चौंक उठा। ऐसा होता है दूध ? इतना स्वादु- इतना मधुर ! वह व्याकुल हो उठा। उसी व्यग्रता में वह घर लौटा और अपनी माता के आंचल में मुख ढांप कर सिसकने लगा। मां ने उसे प्यार किया और रोने का कारण पूछा। उपमन्यु ने सीधे सरल क्रोध के साथ कहा,—"मातः, मुझे तुम प्रतिदिन दूध

के बहाने क्या पिलाती रही हो ? बताओ ! वह दूध तो कदापि नहीं था। मेरे मुख की ओर देखो, मेरे इन दुर्बल अङ्गों को देखो। जो असली दूध पीते है उनके शरीर की यह दशा होती है ? तुमने मुझसे छल क्यों किया ? आज गौतम की माता ने मुझे दूध पीने को दिया। असली दूध ! उसे पीते हुए मुझे ऐसा प्रतीत होता था, जैसे मेरे प्राणों में नई स्फूर्ति आ रही है। उपमन्यु की माता ने कुछ भी उत्तर नहीं दिया। उसकी आंखों में बेबसी के आंसू छलकने लगे।

यह बहुत पुरानी घटना है, बहुत ही पुरानी। कभी बचपन में जब सुनी थी उस दिन उपमन्यु के भाग्य पर और निरीह भोलेपन पर दया उमड़ पड़ी थी। हृदय का रोम-रोम उसकी असमर्थता पर कांप उठा था। तभी तो आज तक उपमन्यु का वह उदास चेहरा उसकी माता की लाचारी और पत्तों के दोने में घुले हुए आटे की फीकी सफेदी अब भी कल्पना के पट पर उज्वल रेखाओं में अंकित हैं।

वही एक उपमन्यु आज सहसा असंख्य हो उठे हैं। देश में सभी जगह अंग्रेजी शैली पर चलने वाले स्कूलों-कालेजों में पढ़ने वाले और पढ़कर जीवन के मैदान में आ जुटने वाले सभी बालक उस उपमन्यु से किसी तरह भी भिन्न नहीं हैं। उन्हें भी, प्रायः सभी को, 'दूध' के स्थान पर वैसा ही घुला हुआ आटा पीने को मिलता है। वे उसे ही दूध समझकर पीते हैं। उसी में स्वाद खोजते हैं।

भारत में शिक्षा रूपी दूध के स्थान पर हमें आज तक जो मिला वह दूध नहीं वही घुला हुआ आटा था। शिक्षा के नाम पर हमें शिक्षा नहीं मिली, मिली केवल अशिक्षा या कुशिक्षा। निस्सार आटे का घोल दूध जैसी कान्ति कैसे पैदा करे ? कवि के कथन के अनुसार—

"रोपे वृक्ष बबूल को आम कहाँ ते होय"

उपमन्यु की माता ने तो मजबूर होकर अपनी बेबसी की जलन से बच्चे की कोमल भावनाओं के अंकुरों को झुलसने से बचाने के लिए वैसा किया था। परन्तु जिन्होंने हमें शिक्षा के महा-मन्त्र सुना सुना कर देने के समय हमें शिक्षा के नाम पर वह निस्सार और अस्वादु 'आटे का घोल' दिया—उनमें न थी बेबसी और न था भोला-पन। वे कुशल थे, अति कुशल।

बीज भूमि के अन्दर पड़कर कभी न कभी फूटता है। हमारे जीवन-क्षेत्र में जिन बीजों को बोकर हम ज्ञान-विज्ञान के सुनहरे अंकुर उगने की प्रतीक्षा करते थे, वहाँ जमीं केवल झाड़ियां, उलझी हुई और फल रहित। हम उनके कण्टों में ही उलझे रहे। विचार और संकल्प की शक्ति का हममें संचार कहां से होता। और संकल्प के सहयोग के बिना हमारी क्रिया-शक्ति का अन्धा बना रहना स्वाभाविक था!

विदेशी बीज भारत-भूमि के जल-वायु के अनुकूल नहीं हो सके। जैसे प्रकृति हर एक जगह के रहने वालों के लिए, उस स्थान की ऋतुवायु के अनुसार वहां खाने-पीने की वस्तुएं पैदा कर देती है। उन्हीं से वहां के रहने वालों का जीवन, ठीक ढंग से, विकसित और पुष्ट होता है। हमारे अहार में अपनी स्थानीय उपज की वस्तुओं की ही मुख्यता होती है। परन्तु आश्चर्य है कि हमारे मन तथा बुद्धि के विकास के लिए हमारी शिक्षा को जितना अधिक अपना होना चाहिए था, उतना ही अधिक 'पराया पन' उसमें भरा हुआ है। क्या भारत के शिक्षित समाज में 'पराए पन' का आभास स्पष्ट नहीं दिखाई देता।

शिक्षा का उद्देश्य है मौलिकता। सत्-शिक्षा मनुष्य में सोचने विचारने की शक्ति को विकसित करती है और उसके अनुसार काम करने की समता के साथ ही साथ आत्म-विश्वास को भी दृढ़ करती है। पर जिसे हम शिक्षा के नाम पर ग्रहण करने के लिए विवश किए जा रहे हैं उसका परिणाम ठीक इसके विपरीत क्यों है ? आज हममें आत्म-विश्वास क्यों नहीं ? साहस क्यों नहीं ? हमारी विचार-शक्ति इतनी दुर्बल क्यों है ? अपनी और अपने समाज की उन्नति सुरक्षा और लाभ-हानि की बात हम सोचने में क्यों असमर्थ हैं ? सभ्यता के इस प्रकाशमय युग में भी हमारे देश में इतना अन्धकार क्यों है ? मृत्यु का, निराशा का, रोगों का, निर्धनता, अज्ञान और आलस्य-असमर्थता का इतना नंगा प्रदर्शन क्यों है ?

समाज के जीवन और विकास के लिए दो बातें आवश्यक हैं : समाज के प्राणों के लिए अन्न और उसके मानसिक और बौद्धिक विकास के लिए सच्ची शिक्षा। ऐसी शिक्षा जो व्यक्ति के लाभ और भोग को ही सर्वोपरि न कर दे—जैसा पश्चिम के देशों में प्रायः देखा जाता है। भारत में इसी 'कृत्रिम' शिक्षा के कारण भारतीय समाज की दशा विचित्र प्रकार से अस्त-व्यस्त हो गई है। समाज के जीवन में इसके कारण भयंकर खाई बन गई है। भारतीय समाज में पढ़े-लिखे कुछ इने-गिने लोग खाने-पीने की सहूलियतें पाकर दूसरे असंख्य लोगों को अज्ञान, निर्धनता और असहाय दशा में दबे देखकर भी उदासीन रहते हैं। पक्के मकानों के पक्के फर्शों को दो चार क्षण की बून्दा-बान्दी से धो डालने वाली वर्षा वास्तव में वर्षा नहीं होती। उससे तो धरती का कण भी नहीं भीगता। धरती के तल मन को भिगो कर चिरकाल से जमी हुई कठोरता और जड़ता को जो दूर न कर सके उसे वर्षा कहना धोखा मात्र नहीं तो क्या है ?

देश का सामूहिक हित देशवासियों की जाग्रति पर टिका रहता है। परन्तु देश में इस प्रकार की शिक्षा से केवल स्वार्थ और जड़ता का प्रस्तार होता हो वहां जनता में यदि अन्ध विश्वास, कुरूढ़ियों, परस्पर वैमस्य और अशांति का बोलबाला हो तो इसमें आश्चर्य क्या है।

आज आजीविका (अन्न) और ज्ञान (शिक्षा) भारत की दो सबसे आगे की समस्यायें हैं। रूस जैसे देशों में जनता के सामूहिक प्रयास से ये दोनों समस्यायें बड़े सुचारु रूप से हल हो गई हैं। कोई कारण नहीं है कि हम भी वैसा न कर सकें, परन्तु इसके लिए हमें भी उन्हीं की तरह प्रगतिशील पद्धति को अपनाकर भगीरथ प्रयास करना होगा।

रामनाथ शास्त्री

(८)

सच्चे हिन्दुस्थानी

स्थान—मेवाड़ समय—संध्याकाल

[महाराणा विक्रमादित्य और चाँदखां (बहादुरशाह का भाई) राजभवन की वाटिका में घूम रहे हैं]

चाँदखां—कितना खुशनुमा (सुहावना) है आपका देश।

महाराणा ! कुदरत ने गोया अपनी सारी दौलत यहां बखेर दी है। यहां की सुबह जिन्दगी का गीत गाते हुए आती है, यहां की शाम हमदर्दी की तान छेड़ती हुई आती है; यहां की रात राहत की सेज बिछाती है। तभी तो दुनिया इसे लालच की निगाह से देखती है, तभी तो आये दिन इसे दूर दूर के शाही लुटेरों का मुकाबिला करना पड़ता है।

विक्रम—असल में चांदखां जी, प्रकृति के ऐश्वर्य को भोगने के लिए, खून बहाने की जरा भी जरूरत नहीं ! यह तो मां की तरह, गरीब और अमीर सभी को अपना आंचल हिला कर बुलाती है।

शाहजादा साहब ! यह तो स्वार्थ का राक्षस है, जो हमारे हृदय में बैठ कर हम से एक दूसरे के गले पर छुरी चलाता है।

चांदखां—आप ठीक कहते हैं, महाराणा ! हम यह नहीं चाहते कि हमारे भाई भी खावें और हम भी खावें। हम तो यह चाहते हैं कि हमी खावें और सारी दुनिया भूखी मरे। जब तक हम हाथी पर बैठ कर नहीं निकलते और दूसरों को पैदल घिसटते नहीं देखते, तब तक हमें बड़प्पन का मजा ही नहीं आता।

विक्रम—मनुष्य का कैसा अधःपतन है। आपके भाई साहब को गुजरात की बादशाहत से भी संतोष नहीं। उन्हें आपके खून की प्यास है। भाई को भाई के खून का प्यासा देख कर जी चाहता है कि यह सृष्टि एकदम नष्ट-भ्रष्ट हो जाय।

(एक सामन्त आता है, और महाराणा को अभिवादन करता है)

विक्रम—क्या है ?

सामन्त—गुजरात के बादशाह का दूत आया है।

विक्रम—गुजरात के बादशाह का दूत ! अच्छा, भेज दो यहीं।

(सामन्त का प्रस्थान)

चांदखां—लीजिए, आ गया मेरे लिए, पैगाम !

विक्रम—कैसा पैगाम ?

चांदखां—मौत का पैगाम !

(दूत का प्रवेश)

विक्रम—कहो क्या है ?

दूत—(पत्र देकर) बादशाह सलामत ने यह फर्मान भेजा है।

विक्रम—देखें क्या लिखा है ? पढ़िए, चांदखां जी, आप ही पढ़िए !

(पत्र चांदखां को देते हैं)

चांदखां—(पत्र पढ़ता है)

महाराणा साहब !

आदाब ! आपने गुजरात के एक बागी को पनाह दी है, वह बाहमी दोस्ताना ताल्लुकात के लिए मुजिर है। आप उसे मेरे सुपुर्द कर दें, वरना मुझे मजबूरन मेवाड़ पर चढ़ाई करनी पड़ेगी।

आपका

बहादुरशाह

(महाराणा की त्योरियाँ चढ़ जाती हैं, वे विचार में पड़ते हैं)

चांदखां—(क्रोध पीकर) हूँ मैं बागी हूँ । महाराणा आप क्यों फिक्र करते हैं ? मेरे सबब से कोई आफत मोल न लीजिए । मुझे जाने दीजिए ।

विक्रम—कहां ! मरने के लिए ! ऐसा नहीं हो सकता, मेवाड़ में आज तक ऐसा नहीं हुआ । सूर्य पश्चिम से भले ही निकले, पर मेवाड़ अपनी आन नहीं छोड़ सकता ।

चांदखां—यह मैं जानता हूँ महाराणा । पर एक जान के लिए मुल्क का मुल्क बरबाद नहीं करना चाहता । मुझे इजाजत दीजिए, मै लौट जाऊं ।

विक्रम—हरगिज नहीं ! मैं अपने हाथों आपको मौत के मुंह में नहीं डाल सकता ।

चांदखां—क्या मौत हमेशा मेरा रास्ता भूली रहेगी ? जो एक दिन होना है, वह आज ही होवे । और फिर भाई के हाथ की तलवार खा कर मरने में एक खास मजा भी तो है !

विक्रम—मैं आपको यह मजा लूटने न दूंगा । आज से आपकी इज्जत सारे मेवाड़ की इज्जत है । आपकी जिन्दगी सारे मेवाड़ की जिन्दगी है । मेरे दोस्त ! दोस्त सुख के दिनों में गले में हाथ डाल कर हंसने के लिए ही नहीं है, विपत्ति के समय एक दूसरे के दु:ख को अपना समझने के लिए भी है । दूत, तुम जाओ । बादशाह से कह देना, मुझे खेद है कि मैं उनका हुक्म नहीं मान सकता ।

(दूत का प्रस्थान)

चांदखां—एक मुसलमान के लिए इतना बखेड़ा ।

विक्रम—क्या कहा ? मुसलमान के लिए ? क्या मुसलमान इन्सान नहीं है ? जाति और धर्म के नाम पर मनुष्यता के टुकड़े न कीजिए ।

चांदखां—महाराणा आपके ख्यालात बड़े पवित्र और ऊंचे हैं । पर क्या सब राजपूत इन्हें पसन्द करेंगे ? एक मुसलमान के पीछे हजारों हिन्दुओं का खून !

विक्रम—आप भी मुसलमान हैं और बहादुरशाह भी । फिर एक मुसलमान दूसरे मुसलमान का गला क्यों काटना चाहता है ? वास्तविक अर्थों में धर्म की लड़ाई किसी भी युग में नहीं हुई । हमेशा एक स्वार्थ से दूसरा स्वार्थ लड़ा है । मैं और आप जब दोस्त बन कर रह सकते हैं, तो क्या सबब है, कि मेरे और आपके धर्म यहां भाई २ की तरह गले में हाथ डाल कर रह नहीं सकेंगे ?

चांदखां—लेकिन अपना मजहब फैलाने की ख्वाहिश ।

विक्रम—सफेद झूठ ! मजहब मनुष्य के हृदय के प्रकाश का नाम है । जो मजहब का नाम लेकर तलवार चलाते हैं, वे दुनिया को धोखा देते हैं, धर्म का अपमान करते हैं । सच्चा वीर वही है, खरा राजपूत वही है, जो न हिन्दुओं के अन्याय का हिमायती है, और न मुसलमानों के । वह न्याय का साथी है और आजादी का दीवाना है । उसे अत्याचारी हिन्दू से ईमानदार मुसलमान ज्यादा प्यारा है । वह............

चांदखां—आप कुछ नई बात कर रहे हैं ।

विक्रम—नई बात ! बिल्कुल नहीं । इतिहास के कुछ ही वर्ष पहले के पृष्ठ पलट देखिए । महाराणा संग्रामसिंह जी ने दिल्ली के बादशाह इब्राहीम लोधी के पुत्र महमूद लोधी का साथ दिया,

उसकी तरफ से बाबर से लड़ाई की। मेवात के बादशाह हसनखां भी बयाना और सीकरी की लड़ाइयों में उनके सहायक थे। क्या महमूदखां और हसनखां मुसलमान न थे? क्या बाबर मुसलमान न था? फिर ये आपस में क्यों लड़े? तोमर राजा शिलादित्य भी तो हिंदू था, जिसने सांगा जी को धोखा देकर बाबर का साथ दिया और राजपूतों के खिलाफ तलवार उठाई। मेरे भाई! मैं फिर कहता हूं, और सच बात भी यही है, कि मजहब आपस में नहीं लड़ते, कुछ व्यक्तियों के स्वार्थ लड़ा करते हैं। गरीब और ईमानदार आदमी हिन्दु हो या मुसलमान-हमेशा अपने पड़ौसियों से मिलजुल कर रहते हैं और रहेंगे।

चांदखां—आप सच कहते हैं, राणा जी, हिन्दु और मुसलमान दोनों ही हिन्दुस्तानी हैं, और रहेंगे। दोनों को एक होकर रहना पड़ेगा। पर मुसलमान ज्यादा कट्टर है। ज्यादा तंग दिल है।

विक्रम—नहीं, यह बात नहीं है। मालवा के बादशाह महमूदशाह को महाराणा कुम्भा ने छः मास तक गिरफ्तार करके रखा था। पर उन्हीं महमूदशाह ने दिल्ली के बादशाह के विरुद्ध कुंभा जी की सहायता की, उनके लिए अपनी जान पर खेल कर लड़े। उस समय अगर वे धोखा देते तो क्या अपना बदला नहीं चुका सकते थे? इतिहास कह रहा है, उस लड़ाई को जीतने का श्रेय कुंभा जी की अपेक्षा महमूदशाह को ही अधिक था। कैसी उदारता थी, उस मुसलमान में। वास्तव में मनुष्यता या पशुता पर किसी धर्म या जाति का अधिकार नहीं है। कुछ आदमियों के गुण और दोष को कौम के माथे मढ़ना एक ऐसी गलती है, जिसे लोग गलती ही नहीं समझते। इसीलिए उसे सुधार नहीं सकते। अच्छा, अब आगे की लड़ाई के लिए सलाह करनी है। अत्याचारों की चुनौती का जवाब देने में मेवाड़ कभी पीछे नहीं रहा। आज भी वह अतिथि-रक्षा के महान कर्तव्य के साथ २ रक्षा-धर्म का पालन करेगा।

(दोनों का प्रस्थान)

(६)

दौड़-धूप

मेरा जीवन सपाट, समथल मैदान है, जिसमें कहीं-कहीं गढ़े तो हैं; पर टीलों, पर्वतों, घने जंगलों, गहरी घाटियों और खंडहरों का स्थान नहीं है। जो सज्जन पहाड़ों की सैर के शौकीन हैं, उन्हें तो यहां निराशा ही होगी। मेरा जन्म संवत् १९३७ में हुआ। पिता डाकखाने में क्लर्क थे, माता मरीज़। एक बड़ी बहिन भी थीं। उस समय पिता जी शायद २०) पाते थे। ४०) तक पहुँचते-पहुँचते उन की मृत्यु हो गई। यों वे बड़े विचारशील, जीवन-पथ पर आँखें खोल कर चलने वाले आदमी थे; लेकिन आखिरी दिनों में एक ठोकर खा ही गये और खुद तो गिरे ही थे, उसी धक्के में मुझे भी गिरा दिया। पन्द्रह साल की अवस्था में उन्होंने मेरा विवाह कर दिया और विवाह करने के साल ही भर बाद परलोक सिधारे। उस समय मैं नवें दर्जे में पढ़ता था। घर में मेरी स्त्री थी, विमाता थीं, उनके दो बालक थे और आमदनी एक पैसे की नहीं। घर में जो कुछ लेई-पूंजी थी, वह पिता जी की छः महीने की बीमारी और क्रिया-कर्म में खर्च हो चुकी थी। और मुझे अरमान था वकील बनने का, और एम० ए० पास करने का। नौकरी उस जमाने में भी इतनी ही दुष्प्राप्य थी, जितनी अब है। दौड़-धूप करके शायद दस-बारह की कोई जगह पा जाता, पर यहां तो आगे पढ़ने की धुन थी—पांव में लोहे की नहीं अष्ट धातु की बेड़ियां थीं, और मैं चढ़ना चाहता था—पहाड़ पर!

पांव में जूते न थे, देह पर कपड़े न थे। महंगी अलग। १० सेर के जौ थे। स्कूल से साढ़े तीन बजे छुट्टी मिलती थी। काशी के

क्रिश्चियन कालेज में पढ़ता था। हेड मास्टर ने फीस माफ कर दी थी। इम्तहान सिर पर था। और मैं बांस के फाटक एक लड़के को पढ़ाने जाता था। जाड़ों के दिन थे। चार बजे पहुँचता था। पढ़ा कर छः बजे छुट्टी पाता। वहां से मेरा घर देहात में पांच मील पर था। तेज चलने पर भी आठ बजे से पहले घर न पहुँच सकता। और प्रातःकाल आठ ही बजे फिर घर से चलना पड़ता था, नहीं तो वक्त पर स्कूल कैसे पहुँचता। रात को भोजन करके कुप्पी के सामने पढ़ने बैठता और न जाने कब सो जाता। फिर भी हिम्मत बांधे हुए था।

मैट्रिक्युलेशन तो किसी तरह पास हो गया, पर आया सेकेंड डिवीजन में और क्रिश्चियन कालेज में भरती होने की आशा न रही। फीस केवल अव्वल दरजे वालों की ही मुआफ हो सकती थी। संयोग से उसी साल हिन्दू कालेज खुल गया था। मैंने इस नये कालेज में पढ़ने का निश्चय किया। प्रिंसिपल थे—मि० रिचर्डसन। उनके मकान पर गया। वे पूरे हिन्दुस्तानी वेष में थे। कुरता और धोती पहने हुए फर्श पर बैठे कुछ लिख रहे थे। मगर मिजाज तबदील करना इतना आसान न था। मेरी प्रार्थना सुनकर—आधी ही कहने पाया था—बोले कि घर पर मैं कालेज की बात-चीत नहीं करता, कालेज में आओ। खैर, मैं कालेज में गया। मुलाकात तो हुई, पर निराशाजनक! फीस मुआफ न हो सकती थी। अब क्या करूं? अगर प्रतिष्ठित सिफारिश ला सकता, तो मेरी प्रार्थना पर कुछ विचार होता; लेकिन देहाती युवक को शहर में जानता ही कौन था।

रोज घर से चलता कि कहीं से सिफारिश लाऊं, पर १२ मील की मंज़िल मार कर शाम को घर लौट आता। किससे कहूँ! कोई अपना पुछत्तर न था।

कई दिनों बाद सिफ़ारिश मिली। एक ठाकुर इन्द्रनारायण सिंह हिन्दू कालिज की प्रबन्ध-कारिणी सभा में थे। उन से जाकर रोया। उन्हें मुझ पर दया आ गई। सिफ़ारिशी चिट्ठी दे दी। उस समय मेरे आनन्द की सीमा न थी। खुश होता हुआ घर आया। दूसरे दिन प्रिंसिपल से मिलने का इरादा था, लेकिन घर पहुँचते ही मुझे ज्वर आ गया। और दो सप्ताह से पहले न हिला। नीम काढ़ा पीते-पीते नाक में दम आ गया। एक दिन द्वार पर बैठा था कि मेरे पुरोहित जी आ गये। मेरी दशा देख कर समाचार पूछा। और तुरन्त खेतों में जाकर एक जड़ खोद लाये और उसे धोकर सात दाने काली मिर्च के साथ पिसवा कर मुझे पिला दिया। उसने जादू का असर किया। ज्वर चढ़ने में घण्टे ही भर की देर थी। इस औषधि ने, मानो, जाकर उसका गला ही दबा दिया। मैंने बार-बार पण्डित जी से उस जड़ी का नाम पूछा; पर उन्होंने न बताया। कहा — नाम बता देने से उसका असर जाता रहेगा ?

एक महीने बाद मैं फिर मि० रिचर्डसन से मिला और सिफ़ारिशी चिट्ठी दिखाई। प्रिंसिपल ने मेरी तरफ तीव्र नेत्रों से देख कर पूछा— इतने दिन कहां थे ?

'बीमार हो गया था।'

'क्या बीमारी थी ?'

मैं इस प्रश्न के लिये तैयार न था। अगर ज्वर बताता हूं, तो शायद साहब मुझे झूठा समझें। ज्वर मेरी समझ में हलकी चीज़ थी। जिसके लिये इतनी लम्बी गैरहाजिरी अनावश्यक थी। कोई ऐसी बीमारी बताना चाहिए, जो अपनी कष्टसाध्यता के कारण दया भी उभारे। उस वक्त मुझे किसी बीमारी का नाम याद न आया।

ठाकुर इन्द्रनारायण सिंह से जब मैं सिफ़ारिश के लिए मिला था, तब उन्हों ने अपने दिल की धड़कन की बीमारी की चर्चा की थी। वह शब्द मुझे याद आ गया। मैंने कहा—पैलपिटेशन आफ़ हार्ट सर।

साहब ने विस्मित होकर मेरी ओर देखा और कहा—अब तुम बिल्कुल अच्छे हो?

'जी हां'

'अच्छा, प्रवेशपत्र भर कर लाओ।'

मैंने समझा, बेड़ा पार हुआ। फ़ार्म लिया, खाने पुरी की और पेश कर दिया। साहब उस समय कोई क्लास ले रहे थे। तीन बजे मुझे फ़ार्म वापिस मिला। उस पर लिखा था—'इसकी योग्यता की जांच की जाय।'

यह नई समस्या उपस्थित हुई। मेरा दिल बैठ गया। अंग्रेजी के सिवा और किसी विषय में पास होने की मुझे आशा न थी, और बीजगणित और रेखागणित से मेरी रूह कांपती थी। जो कुछ याद था, वह भी भूल-भाल गया था, लेकिन दूसरा उपाय ही क्या था? भाग्य का भरोसा करके क्लास में गया और अपना फ़ार्म दिखाया। प्रोफेसर साहब बंगाली थे। अंग्रेजी पढ़ा रहे थे। वाशिंगटन इर्विंग का रिपवान विंकिल था। मैं पीछे की कतार में जाकर बैठ गया। और थोड़ी चार मिनट में मुझे ज्ञात हो गया कि प्रोफेसर साहब अपने विषय के ज्ञाता हैं। घण्टा समाप्त होने पर उन्होंने आज के पाठ पर मुझ से कई प्रश्न किये और मेरे फ़ार्म पर 'सन्तोषजनक' लिख दिया।

दूसरा घण्टा बीज गणित का था। यह प्रोफेसर भी बंगाली थे मैंने फ़ार्म दिखाया। नई संस्थाओं में प्रायः वही छात्र आते हैं, जिन्हें

कहीं जगह नहीं मिलती। यहां भी यही हाल था। क्लासों में अयोग्य छात्र भरे हुये थे। पहले रेले में जो आया, वह भरती हो गया। भूख में सागपात सभी रुचिकर होता है। अब पेट भर गया था। छात्र चुन चुन कर लिए जाते थे। इन प्रोफेसर साहब ने गणित में मेरी परीक्षा ली और मैं फेल हो गया। फार्म पर गणित के खाने में 'असन्तोषजनक' लिख दिया।

मैं इतना हताश हुआ कि फार्म लेकर फिर प्रिंसिपल के पास न गया। सीधा घर चला गया। गणित मेरे लिए गौरीशंकर की चोटी थी। कभी उस पर न चढ़ सका।

इन्टरमिडिएट में दो बार गणित में फेल हुआ और निराश होकर इम्तहान देना छोड़ दिया। दस-बारह साल के बाद जब गणित की परीक्षा अख्तियारी हो गयी, तब मैंने दूसरे विषय लेकर आसानी से पास कर लिया। उस समय यूनिवर्सिटी के इस नियम ने, कितने युवकों की आकांक्षाओं का खून किया, कौन कह सकता है। खैर, मैं निराश होकर घर तो लौट आया, लेकिन पढ़ने की लालसा अभी तक बनी हुई थी। घर बैठ कर क्या करता? किसी तरह गणित को सुधारूं और फिर कालिज में भर्ती हो जाऊं, यही धुन थी। इसलिए शहर में रहना जरूरी था। संयोग से एक वकील साहब के लड़कों को पढ़ाने का काम मिल गया। पांच रुपये वेतन ठहरा। मैंने दो रुपये में अपना गुजर करके तीन रुपये घर पर देने का निश्चय किया। वकील साहब के अस्तबल के ऊपर एक छोटी सी कच्ची कोठरी थी। उसी में रहने की मैंने आज्ञा ले ली। एक टाट का टुकड़ा बिछा दिया। बाजार से छोटा-सा एक लैम्प लाया और शहर में रहने लगा। घर से कुछ बर्तन भी लाया। एक वक्त खिचड़ी पका लेता और बर्तन धो मांज कर लाईब्रेरी चला जाता।

कवित को पढ़ाता था, उपन्यास आदि पढ़ा करता। पण्डित रत्न नाथ दर का 'फिसाना आज़ाद' उन्हीं दिनों पढ़ा। चन्द्रकांता संतति भी पढ़ी। बंकिम बाबू के उर्दू अनुवाद जितने पुस्तकालय में मिले, सब पढ़ डाले। जिन वकील साहब के लड़कों को पढ़ाता था, उनके साले मेरे साथ मैट्रिक्यूलेशन में पढ़ते थे। उन्हीं की सिफारिश से यह पद मिला था। उनसे दोस्ती थी, इसलिए जब जरूरत होती, पैसे उधार ले लिया करता था। वेतन मिलने पर हिसाब हो जाता था। कभी दो रुपये हाथ आते, कभी तीन। जिस दिन वेतन दो-तीन रुपये मिलते, मेरा संयम हाथ से निकल जाता। प्यासी तृष्णा हलवाई की दुकान की ओर खींच ले जाती। दो-तीन आने पैसे खाकर ही उठता। उसी दिन घर जाता और दो-ढाई रुपया दे आता। दूसरे दिन से फिर उधार लेना शुरू कर देता, लेकिन कभी २ उधार मांगते भी संकोच होता और दिन का दिन निराहार व्रत रखना पड़ जाता।

मेरी अब भी पढ़ने की इच्छा थी; लेकिन दिन-दिन निराश होता जाता था। जी चाहता था कहीं नौकरी करलूं; पर नौकरी कैसे मिलती है और कहां मिलती है, यह न जानता था।

जाड़ों के दिन थे। पास एक कौड़ी न थी। दो दिन एक-एक पैसे के चबेना खाकर काटे थे।

मेरे महाजन ने उधार देने से इन्कार कर दिया था, या संकोच वश मैं उससे मांग न सका था। चिराग जल चुके थे। मैं एक बुक्सेलर की दुकान पर एक किताब बेचने गया। चक्रवर्ती गणित की कुंजी थी। दो साल हुए खरीदी थी। अब तक उसे बड़े जतन से रक्खे हुए था, पर आज चारों ओर से निराश होकर मैंने उसे बेचने का निश्चय किया। किताब दो रुपये की थी; लेकिन एक

पर सौदा ठीक हुआ। मैं रुपया लेकर दुकान से उतरा ही था कि एक बड़ी-बड़ी मूछों वाले सौम्य पुरुष ने, जो उस दुकान पर बैठे हुए थे, मुझसे पूछा—तुम यहां कहां पढ़ते हो ?

मैंने कहा—पढ़ता तो कहीं नहीं हूं, पर आशा करता हूं कि कहीं नाम लिखा लूंगा।

'मैट्रिक्युलेशन पास हो ?'

'जी हां'।

'नौकरी करने की इच्छा तो नहीं है ?'

'नौकरी कहीं मिलती ही नहीं।'

वे सज्जन एक छोटे से स्कूल के हेड मास्टर थे। उन्हें एक सहकारी अध्यापक की जरूरत थी। अठारह रुपये वेतन था। मैंने स्वीकार कर लिया। अठारह रुपये उस समय मेरी निराशा-व्यथित कल्पना की ऊंची-से-ऊंची उड़ान से भी ऊपर थे। मैं दूसरे दिन हेडमास्टर साहब से मिलने का वायदा करके चला, तो पांव जमीन पर न पड़ते थे।

(स्व०) श्री प्रेमचन्द

('हंस' के रेखाचित्रांक से)

(१०)

अन्धाधुन्ध

[संयोगिता के स्वयंवर पर जयचन्द ने पृथ्वीराज चौहान को नहीं बुलाया, बल्कि उसकी एक मूर्ति महल के द्वार पर स्थापित की। परन्तु संयोगिता पृथ्वीराज को हृदय से चाहती थी, उस ने इस मूर्ति के गले में ही जयमाला डाल दी। जयचन्द आग बगोला हो उठा। पर पृथ्वीराज उसके देखते २ संयोगिता को घोड़े पर ले भागा। जयचन्द ने बदला लेने की ठान ली और अंधाधुन्ध में एक विदेशी सैनिक मुहम्मद गौरी को पृथ्वीराज पर हमला करने का बुलावा भेजा। पृथ्वीराज डरा नहीं, वह शूरवीर था, परन्तु जयचन्द की तरह अक्ल का अन्धा न था, इसी लिए वह संयोगिता को साथ लेकर जयचन्द को समझाने गया। लेकिन जयचन्द न माना। मुहम्मद गौरी के आक्रमण ने हमारे भारत को सदियों के लिए पराधीन कर डाला। जयचन्द की इस अन्धाधुन्ध का कड़वा परिणाम हम सदियों तक भोगते रहे। 'देश द्रोही' नाटक में श्री संत गोकल चन्द्र ने इस दुर्घटना का जीता जागता चित्र खींचा है। इसी नाटक में से एक दृश्य यहां पर दिया जाता है।]

(स्थान—कन्नौज। महाराज जयचन्द के महल का कमरा। जयचन्द आता है।)

जयचन्द—मन को शान्ति नहीं मिलती। समझ में नहीं आता क्या करूं, क्या न करूं! दिमाग कहता है चलो, बढ़ो, हृदय कहता है ठहरो, सोचो......

(सहसा संयोगिता आती है और पिता के गले से लिपट जाती है)।

जयचन्द—संयोगिता! यहां कैसे? तुम तो भाग गई थी न? उस घटना का जब स्मरण आता है तो पाँव से सिर तक सारे बदन में आग लग जाती है। हजारों बिच्छू काटने लगते हैं। तुम आई? उन्हें छोड़ आई हो? दिन का भूला यदि रात को लौट आये तो उसे भूला नहीं कहा जाता। चलो बेटी, आराम करो। मैं यह शुभ सम्वाद तुम्हारी माता को अभी सुनाता हूँ। उस से कुछ अनबन हुई है जो उसे......

संयोगिता—छोड़ नहीं आई हूं, पिता जी! उन्हें साथ ले आई हूं। वे द्वार पर खड़े हैं।

जयचन्द—मेरा शत्रु मेरे द्वार पर खड़ा है! मेरे महल में पृथ्वीराज, कन्नौज का शत्रु पृथ्वीराज, सुरक्षित पहुँच गया है, रास्ते में किसी ने उसे रोका नहीं, कि जान से मार नहीं डाला।

संयोगिता—पिता जी, हम आप से भीख माँगने आये हैं।

जयचन्द—भीख मांगने की यह अच्छी रीत है। डाका डाल कर, लूट लेने के बाद, लूट के माल को 'भीख' कह कर हड़पना—घाव पर नमक छिड़कना है। अच्छी भीख है! कायर! मुझे अपमानित कर के मुझ से ही भीख मांगने आया है!

(सहसा पृथ्वीराज का प्रवेश)

पृथ्वीराज—मैं कायर नहीं हूं महाराज! (कपड़ों के नीचे से कटार निकाल कर उसके आगे फैंक देता है, यह लो कटार, इससे पृथ्वीराज का हृदय विदीर्ण कर दो। हृदय के रक्त के एक कण में भी कायरता का चिन्ह न पाओगे। मैं जीवन की भीख मांगने नहीं

आया, दो कटे हुए हृदयों के घावों को प्रेम के धागे से सीने आया हूं ?

जयचन्द—जयचन्द घर में आए हुए अतिथि पर, चाहे वह उसका जानी शत्रु भी हो, वार नहीं करता। कटारों का मुकाबला रण-भूमि में होगा।

पृथ्वीराज—इसका मुझे भय नहीं। राजपूतों की आयु तलवारों की धार पर नाचते नाचते कटती है।

संयोगिता—किन्तु बाहरी शत्रु को अपने घर के कलह में हस्ताक्षेप करने का अवसर देना उचित नहीं। अपना पांव जमाने के बाद वह हम दोनों को मारकर अपना रास्ता साफ़ कर लेगा।

जयचन्द—इन बातों का मुझ पर असर न होगा। पृथ्वीराज ! मैंने गौरी से मिल कर तुम्हारा सर्वनाश करने का निश्चय कर लिया है !

पृथ्वीराज—सर्वनाश केवल मेरा ही न होगा, तेरा भी होगा, सारे भारतवर्ष का होगा !

संयोगिता—क्या यह आप को अभीष्ट है, पिता जी ! कि भारत गुलाम हो जाय ?

जयचन्द—अब तक दिल्ली......

पृथ्वीराज—यदि दिल्ली का सिंहासन इस सब बखेड़े का कारण है, तो मैं इसी दम राज्यमुकुट आप के सिर पर धरता हूँ और आजीवन आपका सेवक हो कर रहने को तैयार हूँ।

जयचन्द—जयचन्द दिल्ली के राज्य की भीख नहीं मांगता, वह उसे अपने भुजबल से ले लेगा !

पृथ्वीराज—यह भीख नहीं, आप की धरोहर है, उसे मैं लौटाता हूँ।

जयचन्द—इन तिलों में अब तेल नहीं रहा।

पृथ्वीराज– ऐसी बातें पहले करते तो शायद......

संयोगिता—तो शायद क्या ? अब क्या हुआ है ?

जयचन्द—क्या नहीं हुआ ? जो कसर रह गई थी, उसे तू ने पूरा किया ! अब दिल्ली का सिंहासन भीख में दे कर मुझे और भी लज्जित करना चाहते हो ! मैं अब जीना नहीं चाहता, परन्तु मरने से पहले पृथ्वीराज, तुम्हें, तुम्हारी कीर्ति और तुम्हारी दिल्ली को पद दलित देखना चाहता हूँ ।

संयोगिता—(आँखों में आंसू भर कर जयचन्द के गले से लिपटती है) ऐसा न कहो पिता जी, मैं आपकी पुत्री हूँ । पत्थर से पत्थर दिल वाला भी अपनी पुत्री की अशुभ कामना नहीं करता ।

जयचन्द—(कुछ प्रभावित हो कर) तुम चाहती क्या हो ?

संयोगिता—यही कि आप हमारे साथ मिल कर गौरी को पराजित करें ।

जयचन्द—यह नहीं होगा ।

पृथ्वीराज—नहीं होगा तो परिणाम स्पष्ट है ।

जयचन्द—पृथ्वीराज, संयोगिता के आंसुओं ने मेरे दिल को मोम कर दिया है । इसलिए.........

संयोगिता—(हर्ष से) तो क्या आप हमारा साथ......

जयचन्द—नहीं, साथ नहीं दे सकता, तुम्हारे और गौरी के झगड़े में तटस्थ रहूँगा ।

पृथ्वीराज—महाराज, हम लोग आपस के युद्धों से अत्यन्त निर्बल हो गये हैं वह एक एक करके हम दोनों को नष्ट कर देगा ।

जयचन्द—जो भी हो, मैं इस से अधिक कुछ भी नहीं कर सकता ।

संयोगिता—क्या यही आप का अन्तिम......

जयचन्द—निर्णय ? हां, यही मेरा अन्तिम निर्णय है।

पृथ्वीराज—(हताश होकर) भारत का दुर्भाग्य !

(पृथ्वीराज और संयोगिता धीरे धीरे चले जाते हैं)

जयचन्द—मेरे जीवन का चक्र इतने जोर से चल रहा है कि प्रतिक्षण नई से नई समस्याएं आती रहती हैं। गौरी को क्या उत्तर दूँ ? कोई है ? (दौवारिक से) धर्मायन को बुला लाओ।

जयचन्द—क्या किया जाय ? भारी उलझन में पड़ा हूं।

(धर्मायन का प्रवेश)

धर्मायन—महाराज का क्या आदेश है ?

जयचन्द—इसी समय गौरी के पास संदेशा ले जाओ कि "मैं आप का साथ नहीं दे सकता, तटस्थ रहूंगा।"

धर्मायन—धर्मावतार, पहले तो आप ने सहायता देने का वादा किया था।

जयचन्द—यही तो समस्या है। इधर संयोगिता को भी वादा दे चुका हूं, उधर......

धर्मायन—महाराज, तो गौरी को यह कहला देना अच्छा होगा कि तुम दिल्ली पर धावा करो। उधर हम भी तैयार रहेंगे। उचित अवसर देखकर यथोचित किया जायगा। इस से दोनों वायदे पूरे हो जायेंगे।

जयचन्द—आप ने ठीक सोचा है, यही सही। तो आप इसी समय गजनी को प्रस्थान करें।

(धर्मायन अभिवादन करके जाता है)

(पर्दा बदलता है)

(११)

जब मैं बालक था

यद्यपि मेरी बहुत-सी चीजों की भांति मेरी जन्म-पत्री ला-पता है, तथापि यदि आप मेरा विश्वास करें तो मेरे जीवन की सबसे बड़ी असफलता यह थी कि मैंने वसन्त पंचमी से एक दिन पहिले इस पृथ्वी को भाराक्रान्त किया । मेरे जीवन का श्रीगणेश ही कुछ गलत हुआ; किन्तु इतना संतोष है कि पीछे आने की अपेक्षा आगे आना श्रेयस्कर है । इसमें अग्रदूत कहे जाने की सम्भावना रहती है । यदि मैं बड़ा आदमी होता और यदि मेरा जीवन वृत्त किसी सच्चे या झूठे भक्त ने लिखा होता तो वह ऐसी ही बात कह देता ।

मेरा जन्म इटावे में हुआ था । मुहल्ले का तो नाम सुना है- उसे छिपैटी कहते हैं । लेकिन उस घर का पता नहीं लगा सका जिसमें मेरा जन्म हुआ था । यह प्रयत्न अपने को महत्ता देने के कारण नहीं वरन शुद्ध कौतूहल और मनोविनोद के लिए किया था । मेरे पूज्य पिता जी (बाबू भवानी प्रसाद) इटावे में नौकर थे । वहां से उनकी बदली होने पर मैं ढाई वर्ष की आयु में मैनपुरी लाया गया । मैनपुरी के लोग धोखेबाज कहे जाते हैं । मुझे इसका निजी

अनुभव तो नहीं है, किन्तु उसके सम्बन्ध में जनश्रुति यह है- मैनपुरी बगल में छुरी; खायें सतुआ बतावें पुरी । उसका कुछ अच्छा भी इतिहास है (उसके पास धारा नगरी है जिसे धारऊ कहते हैं) वह मुझे याद नहीं। अस्तु इस नगरी में बाल्यकाल बीता । इसके लिए मैं लज्जित भी नहीं क्योंकि भारत की मोक्ष दायिनी सप्त-पुरियों में अग्रगण्य काशी के सम्बन्ध में भी जन-श्रुति कुछ-कुछ अच्छी नहीं है, जन-श्रुति तो क्या ? श्रुति-सम्मत हरिभक्ति पथ के अनुगामी, धर्म भीरु बाबा तुलसीदास जी ने काशी के सम्बन्ध में स्वयं कहा है 'बासर ठासन के ठका रजनी चहुँ दिस चोर' फिर बिचारी मैनपुरी किस गिनती में है ।

इटावे के जीवन के सम्बन्ध में मेरा स्मृति-पटल बिलकुल कोरा है । मैनपुरी के प्रारम्भिक जीवन की कुछ धुंधली सी स्मृति है, जैसे कभी-कभी भूत-विद्यावादी फोटोग्राफरों की तसवीरों में किसी प्रेतात्मा की छाया आजाती है । उस रूप-रेखा-विहीन स्मृति को देखते हुए मैं कह सकता हूँ कि लोग यदि पूर्व जन्म की बातें भूल जाते हैं तो कोई आश्चर्य नहीं । सम्भव है कि मेरे प्रारम्भिक जीवन में कोई आकर्षक बात न रही हो ।

हम लोग एक ब्राह्मणी बुढ़िया के घर के दूसरे भाग में रहते थे, उसका नाम था त्रिवारी की मां । मैं अपेक्षाकृत अभावों की दुनिया में पला था । 'चाहिए सभी जुरे न काली' की तो बात न थी, न तो मेरी महत्वाकाँक्षाएं ही बढ़ी हुई थीं और न सुविधाओं का नितान्त अभाव था ! फिर भी मैं उन बालकों में से न था जो गर्व से कह सकें कि मेरा जन्म सम्पन्न घराने में हुआ था । मेरे यहाँ चाँदी का चम्मच तो क्या पीतल का भी न होगा । यदि मुझको ऊपरी दूध भी मिल गया हो तो सीपी से, जो मोती की जन्मदात्री

है । खैर, मुझे गरीबी के कारण कभी-कभी रसना का संयम करना पड़ता था। दिवारी आलू-कचालू की चाट बेचा करता था । मुझे याद है कि मैं एक बार चाट के लिए मचला था, दिवारी को पड़ौसी-धर्म और मैत्री-धर्म का उपदेश दिया था, माता से पैसे के लिए अनुनय-विनय की और फिर कहीं अपनी रुचि की तृप्ति कर सका था। अच्छे खाने की कमज़ोरी सारे बाल सफेद प्रायः हो जाने पर भी बनी हुई है। उस घर की बाल-क्रीड़ाओं में अंधे बन कर चलने और चाई माई खेलने की मुझे स्पष्ट स्मृति है।

घर का वातावरण धार्मिक था। माता जी सूर और कबीर के पद गाया करती थीं। मुझ पर प्रहलाद की कथा का बड़ा प्रभाव था। मुझे पूरा विश्वास था कि 'राम कृपा कछु दुर्लभ नाहीं'। बिल्ली के बच्चे अवश्य कुम्हार के अवे में जिन्दा बच गये होंगे-होंगे क्यों कहूं ये कहना सत्य के अधिक निकट होगा । एक बार पड़ौस में जाकर एक कुम्हार से पूछा भी था कि क्या वह बिल्ली जो उसके पास बैठी हुई थी अवे में से निकली थी। 'तो में मो में खड़ग खम्ब में' राम का अस्तित्व बताने में मुझे प्रसन्नता होती थी । 'कर्पूर गौरं करुणावतारं संसार सारं भुजगेन्द्र हारं, भगवान् शिव को और 'शान्ताकारं भुजग शयनं पद्मनाभं सुरेशं, ठाकुर जी को श्रद्धा-भक्तिपूर्वक दण्डवत करने में परमानन्द का अनुभव करता था। उत्तरकालीन बुद्धिवाद ने उस आनन्द को मिट्टी में मिला कर अभी तक मुझे कोई ऐसी वस्तु नहीं दी है जिसके कारण मैं सांसारिक सुखों और महत्वाकांक्षाओं को भूल जाऊं और इधर-उधर न भटकूं । हाँ मेरी वह विनय अब इधर उधर बिखर गई है । अब तो मैं सभी को 'सिया राम मय' जान कर 'जोर जुग पाणी' प्रणाम करता हूं; लेकिन जिनसे कुछ स्वार्थ है उन्हीं के प्रति यह बुद्धि अधिक रहती है। 'छोटे मुंह बड़ी बातें' कहना मुझे बहुत प्रिय था और

इस कारण मैं प्राय: मूर्ख भी बन जाता था। मैं समझता था कि जिस प्रकार सरसों से तेल निकलता है, उसी प्रकार गेहूं से घी निकलता है। क्योंकि गेहूँ सरसों से अधिक कीमती होता है। भेड़िए को मैं भेड़ का बच्चा कहा करता था।

मेरे पड़ोस में एक बढ़ई महाशय रहते थे उन का नाम था सुखराम वे बड़े धार्मिक थे। वे शायद अब भी जीवित हैं। पिछली बार जब मैं मैनपुरी गया था तब उन्हों ने कहा था 'कल्लि के लला बूढ़े हुई गये' उन के चबूतरे पर नीम के नीचे रामायन सुनना मुझे बड़ा अच्छा लगता था। लोग कहते थे कि मैं बड़ा भक्त बनूंगा, लेकिन बड़ा होकर मैंने उनकी आशाओं पर पानी फेर दिया। फिर भी उसका असर अब भी कुछ बाकी है। धार्मिक बातों का मैं आदर करता हूं। खेल-कूद में विशेष रूचि न थी, किन्तु उस के नाम से बिल्कुल अछूता न था, क्योंकि खेल-कूद के पक्ष में जो बातें कही जाती थीं वे मुझे अच्छी लगती थीं। उन में से दो बातें अब भी याद हैं। 'ओना मासी धंग बाप पढ़े ना हम' (उस समय मैं यह नहीं जानता था कि ''ओना मासी धंग जैनियों की देन है (ओ३म् नम: सिद्धाय) 'खेलोगे कूदोगे बनोगे नवाब, पढ़ोगे लिखोगे तो होगे खराब'। धार्मिक होते हुए मैं पढ़ने लिखने से जी चुराता था अवश्य, लेकिन बहुत नहीं। मुझे कभी कोई घसीट कर मदर्से नहीं ले गया।

खेल कई किस्म के होते हैं। उन में वे खेल मुझे पसंद नहीं थे जो दो चार बालक मिलकर खेलते हों। इसका कारण यह था कि मेरे और छोटे भाई-बहन नहीं थे। इसलिए एकान्त के खेल अच्छे लगते थे। जैसे कागज के आदमी या जानवर बनाना। एक बार मैंने अपने पिता के एक मित्र के नुस्खे का एक आदमी बना दिया, बड़ी डाट-फटकार पड़ी। दियासलाई के बक्सों की रेल बनाना आदि के

खेल अच्छे लगते थे। अपने पड़ोसी मिस्त्री जी के यहाँ से लकड़ी का गिट्टक बटोर लाता था और उन के पुल बनाता था। मुझे बैठे रहना अधिक पसंद था, जब जबरदस्ती भगाया जाता था तभी भागता था। स्वास्थ्य के बारे में मेरे पिता जी अधिक सचेत रहते थे किन्तु खराबी यह थी कि स्कूल के सबक की तरह ही भाग-दौड़ का काम मुझ से लिया जाता था। जैसा कि ऊपर लिखा जा चुका है मैं स्वयं आंख मीच कर चलना और चाई-माई फिरना अधिक पसंद करता था। कभी अंधा बन कर भीख मांगने का भी अभिनय करता था। एक बार मैं ननसाल गया हुआ था वहाँ वास्तव में लाड़-प्यार से पढ़ना लिखना भूल गया था। मेरे पिता जी ने लिखा कि तुमने वहाँ पढ़ना-लिखना तो ताक में रख दिया होगा। उसका अर्थ मैं यह समझा था कि मेरा बस्ता तिरवाल में रक्खा है। मैंने अपनी माता से पूछा कि बस्ता तिरवाल में न रक्खूं तो क्या खूंटी से लटकाऊं ?

पढ़ने-लिखने के सम्बन्ध में यह कह सकता हूं कि पढ़ने में तो मुझे रुचि थी, लिखने में नहीं। मेरे पिता जी ने मेरे पढ़ाने में बहुत दिलचस्पी ली। उन्होंने मेरी कई बुरी आदतों को उंगलियों पर पैन्सिल मार मार कर जबरदस्ती छुड़ाया। मैं उंगलियों पर गिना करता था। उंगलियों पर गिनने से मन में जोड़ लगाना नहीं आता। खराब लिखने पर मैं बहुत पिटा हूं। खराब लिखना तो नहीं छूटा, लेकिन हर्फ कुछ स्पष्ट लिखने लगा था। उन दिनों ताड़ना का अधिक महत्व था। ताड़ना की एक खराबी तो रही, कि जितना शरीर स्वस्थ बालक को बनाना चाहिये था, उतना नहीं बना, लेकिन उस के साथ कई गुण भी आए। वे यह कि पराई चीज न लेना और दूसरों का आदर करना।

श्री बाबू गुलाब राय एम० ए०

('मेरी असफलताएं' से)

(१२)

कल की बात

समय जाते देर नहीं लगती। पन्द्रह वर्ष बीत चुके; पर जान पड़ता है कि कल की बात है। सन् १६१६ में मैं तीसरी बार इन्ट्रेंस की परीक्षा देने बैठा था।

दो साल मैं लगातार फेल हो चुका था। और चीजों में ज्यों त्यों पास हो जाता; पर गणित का विषय मुझे अन्त में ले डूबता। छोटे दर्जों में भी इसने मेरे रास्ते में रोड़े अटकाए। परीक्षाओं में इसने मेरे साथ सदा अडङ्गानीति से काम लिया; पर मैं किसी न किसी करवट से दर्जा बराबर चढ़ता ही गया। इन्ट्रेंस में पहुँचना था कि यह मेरे पीछे हाथ धोकर पड़ गया।

खैर, गणित की कृपा से दो साल फेल होकर तीसरे साल मैं फिर इन्ट्रेन्स की परीक्षा देने बैठा। गणित के ज्ञान से अब भी बिल्कुल कोरा था; पर परीक्षा देने चला गया। एक आदत सी पड़ गई थी, जो परीक्षा भवन तक मुझे खींच ले गई।

गणित का पर्चा मेरे सामने रख दिया गया। पर्चा पढ़ने के पहिले मैंने त्रिकुटी में ध्यान लगाकर ईश्वर से प्रार्थना की कि "हे

प्रभो ! आनन्ददाता ज्ञान हमको दीजिए ! कि मैं दो एक सवाल तो ठीक कर सकूं और नहीं तो 'शीघ्र सारे गार्डों' को दूर मुझसे कीजिए, कि मैं आसानी से नकल ही कर सकूं !"

इसके बाद मैं पर्चों को एक बार पढ़ गया। पढ़ते ही ऐसी इच्छा हुई, कि अपना सर खुजलाऊं। फिर मैंने सोचा कि पर्चे को दुबारा पढ़ लूं तब निश्चित होकर सर खुजलाना शुरू करूं। मैंने यही किया। दुबारा पढ़ गया। दुबारा पढ़ डालना, महज एक रस्म की बात थी; अगर सौ बार भी पढ़ता, तो इसी नतीजे पर पहुंचता कि इस कम्बख्त पर्चे का एक सवाल भी मेरे लिए नहीं बनाया गया है।

मैंने कलम को कान पर चढ़ा लिया और हाथ पर हाथ रखकर बैठ रहा। और परीक्षार्थियों की कलमों ने घुड़-दौड़ सी मचा रखी थी, पर मेरी कलम अभी तक टस से मस भी नहीं हुई। कान पर से उतार कर मैं उसे कापी के सामने ले आया; पर उसने आगे बढ़ने से साफ इन्कार कर दिया, मैं हिम्मत न हारा और कलम सम्हाले बैठा ही रहा। मुझे इस तरह बैठा देख कर एक गार्ड ने कहा—
'क्यों व्यर्थ कापी को कलम से धमका रहे हो ?'

मैं चुप रहा। कहाँ तो मेरे गले में 'फांसी' पड़ी है और कहां इन्हें 'हंसी' सूझ रही है ! अपना वक्त सब कुछ कराता है। न मैं ऐसा होता न वे मेरे ऊपर अपनी जबान मांजते। मैं कभी पर्चे की ओर देखता था, कभी कापी की ओर, और कभी कलम की ओर, पर तीनों ढाक के तीन पात की तरह अलग ही नजर आते !

मैंने 'देवता, पित्तर, भुइयां, भवानी,' सबको मनाया; परन्तु किसी ने स्थिति को सुलझाने की कोशिश न की। मैंने आध घण्टे के

अन्दर कलम में चार नई निबें लगाईं कि शायद इसी प्रकार उसकी अकर्मण्यता दूर हो; पर सब उपचार व्यर्थ गए, मैंने सोचा कि लाओ पर्चे की कापी पर नकल कर दूं और घर का रास्ता लूं; पर 'जब तक सांस तब तक आस' ने ऐसा न करने दिया। मेरी इस समय ऐसी दशा थी कि परीक्षक महोदय यदि मेरे सामने आ खड़े होते, तो मैं उन्हें मामा पुकार बैठता। सुना है कि सांप को भी मामा पुकारे तो उसे दया आ जाती है।

मैंने जब अच्छी तरह देख लिया कि और कोई चारा नहीं है, तब यही निश्चय किया कि परीक्षक के नाम कापी में एक पत्र लिख दूं और लिखकर घर का मार्ग पकड़ूं।

ज्यों ज्यों मैं गौर करता था, मुझे एक यही कार्यक्रम समयोचित और उपयुक्त जंचता था। इस कार्यक्रम की विशेषता यह थी कि इससे हानि कुछ भी नहीं थी, क्योंकि परीक्षक यदि मेरी धृष्टता से चिढ़ जाता, तो अधिक से अधिक मुझे फेल कर देता, पर यह कौन नई बात हो जाती ? फेल होना तो यों भी मेरा 'परीक्षा सिद्ध' अधिकार था। इसके विपरीत यदि मेरा पत्र पढ़कर दया से द्रवीभूत होकर वह कुछ नम्बर दे निकलता, तब तो परीक्षा-फल निकलने पर मैं ही मैं दिखाई पड़ता। यह कोई असम्भव बात नहीं थी, परीक्षक बड़ा आदमी होता है, और सुना है, बड़े लोगों के 'दिल दरियाव' में अकसर अनायास—दया की मौज उठने लगती है।

मैं सोच ही रहा था कि इस पत्र को लिखना शुरू करूं, कि किसी ने धीरे से मेरे कंधे पर हाथ रखा। मैंने पीछे घूम कर देखा तो एक महाशय को खड़ा पाया। मुझे देख कर आश्चर्य हुआ कि वे और गार्डों की तरह हृदय-हीन नहीं जान पड़ते थे। उनकी दृष्टि में दया और स्पर्श में समवेदना थी।

वे चले गए, पर मेरे हृदय में आशा को संचार कर गये। मुझे निश्चय हो गया कि वे मेरे लिये कुछ करेंगे। यही हुआ भी वे थोड़ी देर में टहलते हुए मेरे पास आए और बड़ी सफ़ाई से एक सोख्ते का टुकड़ा मेरे पास फेंक कर चल दिये।

मैंने उस सोख्ते के टुकड़े को बड़ी सावधानी से उलेट कर देखा। उस पर्चे के दो सब से कठिन प्रश्नों के उत्तर उनकी संक्षिप्त विधि के सहित पेंसिल के बहुत हल्के हाथ से लिखे हुए थे। अब क्या था! दो सवाल तो मैंने मार लिये। बाकी बच गए चार, कुल छः करने थे। इनसे कैसे निपटा जाए? अब आगे की सुध लेनी थी। मेरे ऊपर अकारण कृपा करने वाले गार्ड महोदय भी कहीं खिसक गए थे।

ठीक इसी समय एक ऐसी घटना हुई, जिसने मुझे, सच पूछिए, तो खतरे से हरिया कर दिया। मुझ से कुछ दूर पर मेरे ही स्कूल का एक लड़का बैठा था।

वह यकायक खड़ा हो गया और बड़े उत्तेजित स्वर में अपने पास वाले गार्ड से बोला—'मास्टर साहिब! मास्टर साहिब यह चौथा सवाल गलत छपा है।' गार्ड ने उसे डांटकर बैठा दिया। और सभी लोग उसकी बात पर अविश्वास की हंसी हंस पड़े। पर मैंने इस मौके पर बड़ी सावधानी से काम लिया। मैं उस लड़के को खूब जानता था। गणित के ग्रन्थों की सैकड़ों उदाहरणमालायें उत्तरोंसहित उसको कण्ठस्थ थीं। ऐसा लड़का बिना कारण किसी प्रश्न को गलत नहीं बता सकता! मुझे विश्वास हो गया कि जब यह कहता है, तब प्रश्न अवश्य गलत होगा। बस, मैंने पन्ना उलट लिया और मार्जिन में प्रश्न नम्बर चार दर्ज करके उसके सामने लिख दिया—'इस प्रश्न के कई बार करने पर मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ, कि यह गलत छपा है, इसलिये इसका उत्तर निकालने की आवश्यकता नहीं है।'

बाद को साबित हुआ कि उस लड़के ने ठीक कहा था। प्रश्न वास्तव में गलत छप गया था। सारी यूनिवर्सिटी में दस ही पांच लड़के इस भेद को जान पाये थे, और उन लड़कों से परीक्षक बहुत प्रसन्न हुआ था। कहना न होगा कि उन्हीं दस-पांच में से मैं भी एक था।

कहां एक सवाल भी पहाड़ हो रहा था, कहां चुटकी बजाते मैंने तीन कर लिये। छः में से तीन पास होने के लिये काफी थे। इसलिये चिन्ता जाती रही और उत्साह बढ़ गया। मैंने सोचा कि जब किस्मत ने चर्राना शुरू किया है, तब उसे चर्राने का काफी मौका देना चाहिये। सम्भव है, किसी सूरत से, किसी ज्ञानेन्द्र द्वारा किसी ओर से, किसी रूप में, किसी प्रश्न पर, किसी समय कुछ भी प्रकाश पड़ जाए तो कुछ और नम्बर बटोर लूं।

मैं शेष प्रश्नों को बार बार पढ़ने लगा। सिर्फ पढ़ना भर हाथ लगता था, पर अब भी मैं बार बार पढ़ने से बाज न आया। एक प्रश्न दशमलव का था, जिसे मैंने दूर से ही प्रणाम कर के छोड़ा। मेरा विश्वास है कि भगवान रामचन्द्र ने बजाय दशानन के दशमलव का संहार किया होता, तो अगणित स्कूली छात्रों के धन्यवाद-भाजन बने होते।

दूसरा प्रश्न ब्याज का था, जिससे मैं तुरन्त समझ पाया कि इस जन्म में न कर पाऊंगा। तीसरा सवाल इस प्रकार था—'एक घड़ी तीन बजे चलाई जाती है और ठीक सात बजे वह बन्द हो जाती है। बताओ कि कितनी देर में घड़ी की दोनों सुइयां एक दूसरी को किस किस समय में पार करेंगी? ऐसे सवालों को करने के लिए अंकगणित में खास तरीका है, जिसे एक बार सीखने की कोशिश करने पर मुझे

सौ बार तोबा करना पड़ा था। और किसी वक्त मैं इस प्रश्न की ओर फूटी आंख भी न देखता, पर इस वक्त स्वयं परमात्मा मेरी पीठ पर था और मुझे तदबीरों की फुरहरी सुझा रहा था। जो प्रश्न मेरे लिये भरतपुर के किले से भी बढ़ कर था, उसे मैंने आज यों सर किया।

मेरी जेब में घड़ी थी। उसे मैंने निकाला। उसमें बारह बजे थे। मैंने उसमें तीन बजा दिए और फिर धीरे धीरे सूई घुमाने लगा और देखने लगा कि दोनों सूइयाँ सात बजने तक कहां कहां पर मिलती हैं। यों मैं ने छः में से चार सवाल कर डा लिए। मूंछे तो उस समय थी नहीं, पर जहां होनी चाहिये, वहां चमड़ा ऐंठता हुआ मैं उस दिन मकान आया। दो महीने में परीक्षा का फल प्रकाशित हुआ। दुनिया ने देखा कि मैं पास हूँ। लोग आश्चर्य में डूब उतराए और उभचुभ हुए। किसी ने अन्धे के हाथ बटेर की कहानी याद की, किसी ने पत्थर पर दूब जमना स्वीकार किया। कई नास्तिकों ने ईश्वर को मान लिया। मैंने अपनी पीठ ठोकी और कहा—जीते रहो। जैसा मेरा राजपाट लौटा, वैसा ईश्वर करे, सबका लौटे।

—श्री अन्नपूर्णानन्द

भारतीय अन्वेषक

प्राचीन काल में आर्यों का स्वर्ण-युग रह चुका है। उस समय वे ज्ञान-भण्डार के भिन्न भिन्न विभागों में उन्नति कर चुके थे। उन की सभ्यता उन्नति की एक सीमा तक पहुँच चुकी थी। उस युग में उन्होंने जितनी उन्नति कर अपने उर्वर मस्तिष्क का परिचय दिया था, उसे बतलाने के लिए आज हमारे पास साधनों का अभाव-सा है। उनकी स्मृति के चिन्ह नष्टप्राय हो चुके हैं। उन की विचक्षण बुद्धि के परिचायक सहस्रों ग्रन्थ आततायियों द्वारा भस्मीभूत किये जा चुके हैं। फिर भी उनकी कृतियों में से संसार के सब से प्राचीन ग्रन्थ वेदों और अन्य ग्रन्थों से जो किसी प्रकार अब तक रक्षित रह सके हैं, उन की बुद्धिमत्ता और उन्नति का आभास मिलता है। ज्ञान के अन्य भण्डारों की भांति उन के भौगोलिक अन्वेषण के सम्बन्ध में भी हमें इन ग्रन्थों से कुछ जानकारी होती है।

आधुनिक युग में नए नए आविष्कारों की सहायता से संसार के किसी भी कोने में यात्रा कर सकना बड़ा सुगम हो गया है। मनुष्य ने क्या स्थल-खण्ड और क्या जल-खण्ड, इस समस्त पृथ्वी तल को पग पग नापने में सफलता प्राप्त कर ली है, यहां तक कि घने हिम से सदा

रुके हुए निर्जन ध्रुव प्रदेशों में भी मनुष्य की पहुँच हो चुकी है। परन्तु आज से कितने ही सहस्र वर्ष पूर्व इन नूतन आविष्कारों का सर्वथा अभाव होने पर भी हमारे पूर्वजों ने इस भूखण्ड के धुर उत्तर स्थित उत्तरी ध्रुव-खण्ड का पूर्ण ज्ञान प्राप्त किया था। वेदों में इस हिम-मय प्रदेश का इस प्रकार वर्णन मिलता है कि बिना उस का प्रत्यक्ष ज्ञान प्राप्त किये उस प्रकार का वर्णन किया ही नहीं जा सकता।

आज के भौगोलिक ज्ञान से हमें इस बात का पता है कि ध्रुव प्रदेश में किस प्रकार ६ मास का दिन और ६ मास की रात होती है। बिल्कुल ध्रुव के निकट साल भर तक दिन ही दिन वा रात ही रात होती है। सूर्य का प्रकाश न होने पर प्रकृति उस खण्ड में एक विचित्र प्रकाश का प्रबन्ध करती है, जिस के सौन्दर्य की तुलना किसी अन्य वस्तु से नहीं की जा सकती। इस मेरु-प्रभा का अस्तित्व ध्रुव-प्रदेशों के अतिरिक्त भूतल पर कहीं भी नहीं है। परन्तु वेदों में इसका बड़ा विशद् वर्णन मिलता है। हम लोगों के एक साल के बराबर वहां पर दिन और रात होने का भी उनमें उल्लेख है। इन सब बातों का बिल्कुल ठीक ठीक वर्णन ध्रुव प्रदेश की पूर्ण जानकारी रक्खे बिना हो ही नहीं सकता। परन्तु आर्यों ने इन का वर्णन किया है। अतएव हम कह सकते हैं कि वे वहां अवश्य पहुँच सके होंगे।

इतिहासवेत्ता कहते हैं कि आर्य मध्य एशिया के निवासी थे। वहां से चल कर वे भारतवर्ष पहुँचे और धीरे-धीरे वहां के सब प्रांतों में फैलकर वहीं बस गये। लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक ने आर्यों के आदिम निवास स्थान के सम्बन्ध में एक ग्रन्थ लिख कर यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया था कि आर्य उत्तरी ध्रुव-प्रदेश के ही रहने वाले

थे और वहां से धीरे धीरे दक्षिण की ओर फैले थे। आर्यों के आदि निवास स्थान की चाहे जो बात सत्य हो परन्तु वेदों में ध्रुव-प्रदेश के वर्णन से हमें यह विश्वास हुए बिना नहीं रह सकता कि वे या तो ध्रुव-प्रदेश में ही पहले निवासकर अन्य प्रदेशों में फैले थे या मध्य एशिया में आदिकाल में निवास कर भ्रमण कर उत्तरी ध्रुव-प्रदेश तक पहुँच सके थे और उसका यथार्थ ज्ञान प्राप्त किया था। ध्रुव-प्रदेश में आज भी बर्फ में दबे हुए ऐसे विशालकाय जन्तुओं का भग्नावशेष व अस्थिपंजर मिलता है, जिनका अवलोप हो चुका है, परन्तु उन अस्थि-पंजरों से विश्वास होता है कि किसी समय वहां जीवधारियों का निवास था। इस कारण प्राचीन काल में वहां तक आर्यों के पहुँचने की बात अविश्वसनीय नहीं समझी जा सकती।

यह तो हुई आर्यों के भारत में आने से भी पहिले की, बहुत दिनों पूर्व आदि काल की बात, परन्तु आर्यों के भारत में बस जाने पर उनकी किन किन देशों तक पहुँच थी, यह एक विवादास्पद प्रश्न है। इस बात का कोई निश्चित रूप से प्रमाण तो नहीं मिलता कि भारतीय आर्य आज से अधिक से अधिक कितने दिनों पूर्व किन किन देशों तक अपनी पहुँच कर सके थे, परन्तु इसका हम अनुमान कर सकते हैं। पुरातत्त्व-वेत्ता संसार के इतिहास में मिश्र और बेबिलोन जो मेसोपोटामिया प्रान्त का प्राचीन नाम था, की सभ्यता को बहुत पुरानी मानते हैं। मेसोपोटामिया में रहने वाली मितानी नाम की एक जाति की सीरिया प्रांत के निकट कोपाडोसिया में रहने वाली हिट्टाइट नाम की जाति से एक सन्धि ईसा के १५०० वर्ष पूर्व हुई थी। उस सन्धिपत्र में आर्यों के देवता इन्द्र, वरुण और मित्र आदि का नाम मिलता है। इससे भारतीय आर्यों का इन देशों तक आवागमन होने का हम भलीभांति अनुमान कर सकते हैं।

बेबीलोनिया फारस की खाड़ी के समीप था, इस कारण वहां के निवासियों ने फरात और दजला नदियों तथा इस खाड़ी में जल-यानों के दौड़ाने का प्रयत्न किया। इतिहास-वेत्ता बतलाते हैं कि यहीं के निवासी फिनीशियन लोगों ने पहले पहल जलयानों पर जल-खण्ड पार करने का श्रीगणेश किया था परन्तु भारतवर्ष में भारतीय आर्यों ने सभ्यता के अन्य भागों में आज के सहस्त्रों वर्ष पूर्व जितनी उन्नति कर ली थी उसे देख यह विश्वास नहीं किया जा सकता कि गंगा और सिन्धु जैसी विशाल नदियों के होते हुए भी उन्होंने नौकाओं का निर्माण न किया होगा। भारतवर्ष में प्रविष्ट होने पर ऋग्वेद में वर्णित ब्रह्मवर्त और ब्रह्मर्षि देश तक पहुँचने के लिये उन्होंने सिन्धु नद, पंचनद, सरस्वती, दषद्वती तथा गंगा ने पग पग पर नौका-निर्माण की ओर उनका ध्यान आकर्षित किया होगा। इन नदियों को पार कर आगे बढ़ने का सिन्धु नदी के मार्ग दक्षिण जाने पर उनके विशाल भारत महासागर दृष्टिगोचर हुआ होगा। उसे देखकर वे उसकी ओर बढ़ने की अपनी उत्सुकता न रोक सके होंगे। यही कारण है कि हम आज से हजारों वर्ष पूर्व भारतीय तट पर समुद्र में जलयानों के दौड़ लगाने का प्रमाण पाते हैं। वेदों में समुद्री जलयानों द्वारा यात्रा का कई स्थान पर उल्लेख है।

भारतीय आर्यों के ये जलयान किन महासागरों की दौड़ लगा सकने में अतीत काल में सफल हुये थे, इसका प्रमाण पा सकना बड़ा कठिन है, परन्तु हम इतना कह सकते हैं कि पश्चिम में फारस, अरब, लाल सागर और अफ्रिका तक तथा पूरब में सुमात्रा, जावा, बाली द्वीप आदि और चीन, स्याम, कम्बोडिया तथा जापान तक इनकी अवश्य ही पहुँच रही होगी। फारस की खाड़ी के तट पर स्थित बेबिलोनिया के भग्नावशेषों में बहुत ही प्राचीन काल की एक

प्रकार की एक लकड़ी पाई गई है, जो केवल भारतवर्ष में समुद्र तट पर होती थी। वह जलयानों द्वारा ही भारत से वहां पहुँचाई जा सकती थी, इस कारण उसकी प्राचीनता से सिद्ध होता है कि कम से कम आज से कई सहस्त्र वर्ष पूर्व भारतवर्ष से उस स्थान तक जलयानों का आवागमन जारी था। पूर्व में जावा द्वीप के निकट बाली द्वीप में आज भी प्राचीन हिन्दुधर्म का प्रसार है और सुमात्रा, जावा आदि द्वीपों और कम्बोडिया में हिन्दु मन्दिरों और देवताओं के चिन्ह भी पाये जाते हैं।

इन स्थानों में संस्कृत में लिखे हुए शिलालेख भी मिले हैं। इन प्रमाणों से ज्ञात होता है कि आर्यों ने अपने जलयानों द्वारा उन स्थानों तक आवागमन ही नहीं जारी रक्खा था, प्रत्युत उन्होंने इन स्थानों में अपने उपनिवेश भी स्थापित किये थे। भारत में मुसलमानों के आक्रमण होने के तीन शताब्दियों पश्चात् तक भी इन स्थानों में हिन्दुओं का साम्राज्य था, परन्तु मातृभूमि के असहाय होने पर वे विजातियों द्वारा आक्रान्त होकर विनष्ट होगये।

भारतीय साहित्य में समुद्रमार्ग द्वारा कितने ही स्थानों तक आर्यों के जाने का उल्लेख मिलता है। ऋग्वेद में एक स्थान पर लिखा है कि व्यापारी लोभ के मारे दूसरे देश को जलयान भेजते हैं। उसी में एक दूसरे स्थान पर तुग्र नाम के एक राजर्षि का अपने पुत्र भुज्यु को शत्रुओं का सामना करने के लिए भेजने का उल्लेख है, जो समुद्र में किसी दूर के द्वीप में रहते थे। भुज्यु के सब साथियों के साथ जलयान डूब जाने से अश्विन लोगों ने अपनी सौ डांडों से खेई जाने वाली नौका से उसकी रक्षा की थी। रामायण में सीता को खोजने के लिए सुग्रीव बन्दरों को समुद्री द्वीप के नगरों और पर्वतों, कोषकार देश (रेशम का देश, चीन)

यवन द्वीप (जावा द्वीप) सुवर्ण द्वीप (सुमात्रा) तथा लोहित सागर (लाल सागर) में जाने की आज्ञा देता है।

महाभारत में राजसूय यज्ञ और अर्जुन तथा नकुल के दिग्विजय के वर्णन में बहुत से देशों का नाम आया है, जिनसे भारतवर्ष के साथ आवागमन होता था। सभापर्व में पांडवों के छोटे भाई सहदेव का समुद्र के बहुत से द्वीपों में जाना और वहां के म्लेच्छ निवासियों का विजय करना लिखा है। इसके अतिरिक्त संस्कृत के अन्य काव्य ग्रन्थों में समुद्र-यात्रा की चर्चा प्रायः मिलती है।

हितोपदेश, कथा-सरित्सागर आदि कहानी की पुस्तकों में भी समुद्र-यात्रा की बहुत सी कथायें लिखी हैं। इन वर्णननों के अतिरिक्त समुद्र-यात्रा की पुष्टि के लिए शिलाखण्डों पर अंकित जल-यान के चित्र बहुतायत से पाये जाते हैं। भारतवर्ष से सुदूर स्थित जावा द्वीप में भी भारतीय जलयानों के चित्र अब तक पाये जाते हैं, जिनसे आर्यों के समुद्र में दूर-दूर तक यात्रा करने का विश्वास कर सकते हैं।

आर्यों ने प्राचीन काल में जिन जिन देशों तक यात्रा की होगी, उनमें अधिकांश व्यापार के लिए उनका आवागमन हुआ होगा, परन्तु व्यापार के साथ ही उनमें अपनी आर्य संस्कृति को सुदूर देश में फैलाने की उत्कण्ठा ने भी विशेष योग दिया होगा। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण हम भगवान बुद्ध के धार्मिक अभ्युदय में देखते हैं। जिस समय बुद्ध भगवान ने अपने धर्मोपदेश का प्रसार करने के लिए बौद्ध भिक्षुओं के अन्तस्तल में अपना मन्त्र फूंका उस समय भारत के संकुचित क्षेत्र में संसार के दूर से दूर ज्ञात और अज्ञात देशों और द्वीपों तक पहुंचने के लिए बाहर निकल पड़ने के लिए एक बड़ी वेगवती लहर उठ खड़ी हुई, जिसके फलस्वरूप चीन,

जापान, सुमात्रा, जावा और अन्य बहुत से देश बौद्ध भिक्षुओं द्वारा छान डाले गये। स्थलखण्ड के अतिरिक्त जलखण्ड में भी जलयान पर दूर दूर तक की भीषण यात्रा कर सकने के लिए बुद्ध भगवान के संदेश के कारण एक नई शक्ति प्राप्त हुई, जिससे भारतीय नाविक समुद्रीय संकटों का सामना करते हुए बहुत दूर तक भारतीय महात्मा का संदेश पहुँचा सके।

प्राचीन काल में समुद्र यात्रा करना बड़ा कठिन कार्य था। उन दिनों आजकल की भांति समुद्र-मार्ग दिखाने के लिए कोई साधन नहीं था। आजकल के लोहे के विकराल जलयानों के स्थानों पर उन दिनों लकड़ी के ही जलयान थे, और इंजिन-शक्ति के स्थान पर डांड वा पालों की शक्ति से उनका संचालन हो सकता था। दिशा के ज्ञान के लिए दिन को सूर्य और रात को तारों पर ही आश्रित रहना पड़ता था। चीन वालों ने साधारण ढंग के दिशा-सूचक यन्त्रों को भी जन्म दिया था। स्थल-खण्ड के किनारे जलयानों का चलाना अधिक कठिन था। इस कारण प्रारम्भ में समुद्र-यात्राओं के लिए आर्यों को तट का आश्रय ही लेना पड़ा होगा। परन्तु बौद्ध धर्म ग्रन्थों में तट से दूर खुले महासागर में होने वाली यात्राओं का ऐसा वर्णन मिलता है कि उन पर हमें विश्वास करना ही पड़ता है। उनमें ऐसा उल्लेख है कि महासागर के यात्री जलयानों में बलिष्ठ पंख वाले पक्षी रखते थे। मध्य समुद्र में होने पर जब उन्हें भूमि के निकट होने का पता लगाना होता तो वे पक्षी को उड़ा देते। पक्षी ऊपर उड़ कर निकट भूमि होने पर उस ओर उड़ जाता और यदि भूमि निकट न होती तो वह लौट कर फिर जलयान पर ही लौट आता।

इस प्रकार के साधनों से बौद्ध भिक्षुओं ने एशिया और अफ्रीका महाद्वीप के देशों तक ही समुद्र यात्रा नहीं की थी, प्रत्युत वे

अमेरिका तक भी जा पहुंचे थे। अभी थोड़े दिनों पूर्व तक हम कोलम्बस को अमेरिका का पहले पहल अन्वेषण करने वाला समझते थे; परन्तु आधुनिक ऐतिहासिक खोजों ने सिद्ध कर दिया है कि कोलम्बस के कम से कम दो सहस्त्र वर्ष पूर्व भारतीयों ने उस महाद्वीप तक यात्रा ही न की थी, प्रत्युत अपनी सभ्यता भी फैलाई थी, जिसके चिन्ह वहां पर भूमि खोदने पर हाल ही में मिले हैं। मैक्सिको में बौद्ध धर्म के प्राचीन चिन्ह पाये गये हैं। वहां पर भगवान बुद्ध की मूर्तियों के मिलने के अतिरिक्त नगर आदि के नामों में भी आर्यों की भाषा की सभ्यता पाई जाती है। इन प्रमाणों से पुरातत्ववेत्ता इसे एक मुख से स्वीकार करते हैं कि अमेरिका में भारतीय आज से सहस्त्रों वर्ष पूर्व पहुंच चुके थे।

प्राचीन काल में आर्य लोगों ने भौगोलिक अन्वेषण में कितना आगे पग बढ़ाया था, उसका हमें इन बातों से कुछ आभास मिल रहा है। यह पूछा जा सकता है कि जब आर्यों ने इतने अधिक देशों तक अपनी पहुंच की तो उन यात्राओं और अन्वेषणों का वर्णन क्यों नहीं लिखा? परन्तु आर्यों ने जितने साहित्य का निर्माण किया था, वह दुर्भाग्यवश पूर्णरूप में आज उपलब्ध नहीं है। प्राचीन काल से संगृहीत बहुत से पुस्तकालयों को विजातीयों ने भारत में आक्रमण करने के लिए आने पर सर्वथा विध्वंस कर दिया था। उन विध्वंस किये ग्रन्थों के साथ आर्यों की कितनी ही विद्या का लोप हो गया। सम्भव है उन्हीं ग्रन्थों के साथ उनके वे ग्रन्थ भी लुप्त होगये हों, जिनमें आर्यों ने अपने भौगोलिक अन्वेषणों का उल्लेख किया हो। प्राचीन काल में मुद्रण यन्त्र का जन्म न हो सका था और न कागज का ही बाहुल्य था। ताड़पत्र, भोजपत्र व अन्य वनस्पतियों की छाल व पत्ते तथा धातुओं के पत्रों पर ही ग्रन्थ लिखे जा सकते थे। इस कारण उनकी बहुत अधिक प्रतियां नहीं की

जा सकती थीं। बड़े बड़े पुस्तकालयों में ही वे पाई जा सकती थीं। लोग ग्रन्थों को कण्ठस्थ कर काम चलाया करते थे, परन्तु जब विदेशियों द्वारा हमारे पुस्तकालयों का सर्वनाश हुआ तो प्राचीन विद्यापीठों के आचार्य और शिष्य भी साथ ही काल के ग्रास बनाये गए। इस कारण इधर-उधर भूले भटके विद्वानों को कण्ठस्थ होने व कहीं कुछ पुस्तकों के बचे रह जाने से भारतीय साहित्य कुछ अंशों में सुरक्षित रह सका है। इन कारणों से हम अपने साहित्य में प्राचीन काल के भौगोलिक अन्वेषण के पाने की विशेष आशा नहीं रख सकते।

श्री जगपति चतुर्वेदी

['पृथ्वी के अन्वेषण की कथा' से]

(१४)

विशाल भारत

भारत का दक्षिण पूर्वी और पश्चिमी भाग विशाल समुद्र तट से घिरा हुआ है और कन्या कुमारी के पास वह एक समुद्री देश का ही दृश्य उपस्थित करता है। भारत का व्यापार प्राचीन काल से ही विदेश के साथ रहा है। इसलिये कोई आश्चर्य नहीं कि दक्षिण भारत वालों ने व्यापार और व्यापारिक मंडियों की तलाश में जहाज तैयार कर के समुद्र लांघे हों ?

चन्द्रगुप्त मौर्य के महामन्त्री कौटिल्य ने भी अपने अर्थशास्त्र में जहाजों का वर्णन किया है और चन्द्रगुप्त के दरबार में आये हुए ग्रीक राजदूत मेगास्थनीज ने भी इसकी चर्चा की है। दक्षिण का ही समुद्र से विशेष सम्बन्ध है, अतएव समुद्री व्यापार का भी अधिकांश भाग दक्षिणियों के हाथ में रहा है। दूसरी और तीसरी शताब्दी के आंध्र देशीय सिक्कों पर दो मस्तूल के जहाजों के छाप पाये जाते हैं। इस से सिद्ध होता है कि दक्षिण वाले जहाज बनाना जानते थे और समुद्री व्यापार में पटु थे। उन्हीं के प्रयत्नों से पूर्वीय द्वीपों में भारतीय उपनिवेश बसे थे।

ईसा की प्रथम शताब्दी से शुरू हो कर ३२० वर्ष तक यह उपनिवेश बसाने का काम जारी रहा। मलक्का, जावा, सुमात्रा, कम्बोडिया, और बोर्नियो सभी जगह दक्षिणी लोग अपने साथ

भारतीय संस्कृति और फैला ले गये। बर्मा, स्याम और इण्डोचाइना में भी विशाल भारतीय उपनिवेश बस चुके थे। यह हिन्दू उपनिवेश थे और इन का नाम दक्षिणी भारत के स्थानों के ढंग पर था। कुछ शताब्दी बाद वहां बौद्ध धर्म का प्रसार हुआ और सारा मलयेशिया (मलाया + एशिया) बौद्ध बन गया।

इन्डो-चीन भारत का प्राचीनतम उपनिवेश था, अन्नाम, जिसका पुराना नाम था, चम्पा। वहां तीसरी शताब्दी में पाण्डु रंगम नाम का एक भव्य नगर खड़ा हुआ। ४०० वर्ष बाद कम्बोज में भी महान नगर बस गये। ये नगर बड़ी बड़ी इमारतों और मन्दिरों से होते थे। मल्लयेशिया के निवासी अधिकतर व्यापारी और यात्री थे। इनका राज्य भी सम्पन्न व्यापारियों के हाथों में था। अक्सर उनके छोटे-छोटे राज्यों में लड़ाइयां और खून खराबी हुआ करती। कुछ दिनों बाद जब बौद्ध धर्म प्रबल हो उठा तो इन लड़ाइयों का रूप धार्मिक हो गया। कभी कोई बौद्ध राज्य हिन्दू राज्य पर हमला करता, तो कभी कोई हिन्दू राज्य बौद्ध राज्य पर। किन्तु इन लड़ाइयों की तह में आज ही की तरह बाजारों पर अधिकार करने की होड़ ही अधिकांश में थी।

आठवीं शताब्दी तक इन्डो चीन में तीन बड़े हिन्दू राज्य थे। नवमी शताब्दी में जय वर्मन नामक एक महत्वाकांक्षी शासक पैदा हुआ, जिसने उन सभी राज्यों को मिला कर एक महान् साम्राज्य स्थापित किया, जो ३०० वर्ष तक कायम रहा। तेरहवीं शताब्दी में कम्बोडिया पर कई तरफ से आक्रमण हुआ और बहुत दिनों तक निरन्तर लड़ते रहने के फलस्वरूप राज्य कमजोर हो गया। इसी बीच एक भयंकर प्राकृतिक विपत्ति भी कम्बोडिया के पतन में सहायक हुई। १३०० ई० के लगभग राजधानी अंगकोट के पास मैकांग नदी के मुहाने पर इतनी मिट्टी जम गई कि नदी का बहना दुष्कर हो गया।

जिससे समूचे निकटवर्ती प्रदेश में भयंकर बाढ़ आ गई। अंगकोट का शानदार नगर उजड़ गया और कम्बोडिया का राज्य नष्ट हो गया।

इन्डो चीन के पास ही सुमात्रा का भी द्वीप है। यहां पहली या दूसरी शताब्दी में दक्षिण के पल्लव राजाओं ने अपना उपनिवेश स्थापित किया था। मलाया प्राय-द्वीप प्रारम्भ से ही सुमात्रा का भाग बन गया, और बहुत दिनों तक इन दोनों देशों के भाग्य एक साथ बंधे रहे। इस की राजधानी थी श्री विजय नामक विशाल नगर में, जो सुमात्रा की पहाड़ियों में स्थित था। पांचवी या छठी शताब्दी में वहां बौद्ध धर्म पहुँचा। तथा सुमात्रा ने परवर्ती काल में बौद्ध धर्म के प्रचार में अगुआ का भाग लिया। सुमात्रा का राज्य आगे चल कर इतना विस्तृत हो गया कि एक समय उसके भीतर मलाया, बोर्नियो, फिलीपाइन्स, सेलेबीज, जावा का आधा भाग, फारमोसा का आधा भाग, लंका और फारस के समीपस्थ कई बन्दरगाह भी उसके शासन के अन्तर्गत हो गये।

सिंहापुर का प्रसिद्ध सैनिक अड्डा भी सुमात्रा का ही एक उपनिवेश था। उक्त साम्राज्य के विभव का पूरा विकास ११ वीं शताब्दी में हुआ जब दक्षिण भारत में चोल साम्राज्य उन्नति पर था। बाद में १४ वीं शताब्दी में जावा के पल्लव उपनिवेश द्वारा श्री विजय और सुमात्रा के साम्राज्य का अन्त हो गया।

१२ वीं शताब्दी के बाद जावा का राज्य धीरे धीरे बढ़ने लगा था और उनकी सभ्यता का बोलबाला होता रहा। जावा वाले स्थापत्य कला में अद्वितीय थे। विशेषकर मन्दिर निर्माण की कला में। वहां ५०० से ऊपर मन्दिर थे और उन्हें बनाने के लिये ६५० ई० से १०५० ई० बीच में १०० कुशल कारीगर भारत तथा चीन आदि देशों से लिये गये।

— सुरेन्द्र बालूपुरी
('धरती का इतिहास' से)

(१५)

देवराज इन्द्र की सेवा में

एक पत्र

मृत्यु लोक

६–५–५१

देवराज,

आप के स्वर्गलोक की हमने बड़ी प्रशंसा सुनी है। पुस्तकों में भी उसका ऐसा लुभावना वर्णन किया गया है कि हमारी इच्छा एक बार उसका दर्शन करने की हो कर रह जाती है।

कोई कहता है कि स्वर्गलोक के निवासी हमेशा युवक बने रहते हैं, कभी बूढ़े नहीं होते। यहां के बूढ़ों की तरह उनकी कमर नहीं झुकती है। न आंखें धोखा देती हैं, न मुंह पोपला होता है। हमारे यहां के-से पिचके पिचके गाल और दुबले-पतले शरीर वाले जवान आप के यहां नहीं मिलते। न आप के यहाँ ऐनक लगाने की जरूरत पड़ती है, न छड़ी ले कर चलने की और न डाक्टरों की मदद से जीने की ही। और भी बहुत सी बातें हैं। सुना है कि आप के लोक में मनचाही वस्तु देने वाला कल्पवृक्ष है, मनकी इच्छा पूरी करने

वाली कामधेनु है। कहते हैं कि कामधेनु सैंकड़ों हजारों मन अन्न मिठाइयां पलकें झपकाते ही दे देती है। आजकल हमारे यहां इन चीजों की बड़ी जरूरत है।

सुना है स्वर्ग में बड़ा धन है। आप उसके स्वामी हैं। इतिहास में हमने पढ़ा है कि किसी समय हमारे भारत में भी करोड़ों मन सोना चांदी भरा था। इसी से हमारा देश सोने की चिड़िया कहलाता था। आप का धन देख कर हमें अपने देश के प्राचीन धन का कुछ पता हो सकता है।

आप के सुन्दर महल भी देखने की हमारी इच्छा है। हमारी पृथ्वी पर बड़े २ विचित्र भवन बने हैं। कोई कोई महल तो पांच छः सौ फुट ऊंचा है। बिजली की कोठारियों में बैठ कर लोग इन में चढ़ते उतरते हैं। सुख के सभी सामान इन महलों में हैं। ठंडा और गर्म पानी, तरह २ के भोजन, गुद-गुदे गद्दे; मीठे सुर वाले रेडियो, पुस्तकें, रंग बिरंगे पत्र—सभी कुछ तो इन में मिल जाता है। आप के महलों में भी यह चीजें हैं! उन्हें देख कर हम यह जान सकेंगे कि आप के कारीगर चतुर हैं या हमारे इस संसार के?

आपका प्रसिद्ध अस्त्र वज्र है। सुना है वह कभी खाली नहीं जाता। और भी पचासों अस्त्र-शस्त्र आप के पास हैं। किसी के चलाते ही आग बरसने लगती है। किसी से मूसलधार पानी बरसता है, कोई आंधी चलाता है, तो कोई पत्थर बरसाता है। इस संसार में हमारे वैज्ञानिकों ने भी तरह तरह के भयानक हथियार बनाये हैं। हम यह देखना चाहते हैं कि हमारे वैज्ञानिकों को दूर की सूझी है या वे अभी आप के वैज्ञानिकों से पीछे ही हैं।

आपके विमानों की भी बड़ी तारीफ सुनी है। पुष्पक विमान ने राम को लगभग एक हजार मील का सफर एक दिन में करा दिया था।

हमारे इस लोक में इस से भी तेज चलने वाले वायुयान बन चुके हैं ! पर आप के विमानों में सुनते हैं, एक खूबी यह है कि जहां चाहे रुक सकते हैं। आपके विमान देखने से शायद इसका कोई उपाय हमें भी सूझ जाये।

अब सवाल यह है कि आपके स्वर्गलोक तक पहुंचा कैसे जाय ? मरने के बाद सुनते हैं, अच्छे काम करने वाले स्वर्ग जाते हैं, पर हम तो जीते जी ही आपके दर्शनों को पाना चाहते हैं। हमारे वायु-यान तो स्वर्ग तक पहुँच नहीं सकते। इसलिए आप ही कोई उपाय बताने की कृपा करें।

आशा है, हमारी इस नम्र प्रार्थना पर आप ध्यान देंगे। आपके श्री चरणों में हम प्रणाम करते हैं।

मैं हूँ, आपका

दर्शनाभिलाषी,

भुजंगभूषण भट्टाचार्य (एम. ए.)

[लोभ कुण्ड के समीप,

कलि नगर]

('कलि–सहोदर' से)

(१६)

चाटुकार

कौन ऐसा मनुष्य है जिसे अपनी प्रशंसा सुनने को जी न ललक उठता हो ? संसार में बहुत से अच्छे-अच्छे काम इसी लिए किए जाते हैं कि जग में हमारा मुँह उजागर रहे। एक बड़ा लाभ इससे यह है कि जो प्रशंसा पाने की फिकर में लगे रहते हैं। वे बदनामी से अवश्य बचते हैं। नहीं तो दुनिया का कुछ ऐसा बेढब और नाजुक कारखाना है कि यदि हम भलाई नहीं करें तो बुराई कहीं ढूंढनी नहीं पड़ती। जैसे एक उम्दा बाग हो जिसकी धरती अत्यन्त उपजाऊ और उर्वरा है, पर यदि हम उसमें मीठे फल और सुगन्धित फूलों के बीज न बोयें तो लम्बी-लम्बी घासें आपसे आप उग आती हैं। पर इस प्रशंसा से हमारा प्रयोजन सच्ची प्रशंसा का है, क्योंकि मिथ्या प्रशंसा व्यंग्य रूप में एक प्रकार की बदनामी ही है और जो लोग बदनाम हैं वही झूठी-झूठी प्रशंसा से नेकनाम हुआ चाहते हैं। मिथ्या प्रशंसा को ऐसा बिगाड़ देती है जैसे सिरका दूध को, और नोन हलुवे को। जब दो वस्तुओं का मेल होता है तो जो अधिक बलवान होती है वही दूसरे पर प्रबल हो जाती है। ऐसे ही यहां मिथ्या शब्द है। जिसने प्रशंसा को बिलकुल बिगाड़ डाला और मिथ्या ही मुख्य रहा। प्रशंसा सर्वथा बाधित हो गई।

अब देखना चाहिए कहां तक यह मिथ्या प्रशंसा पल्लवित की गई है। पुराने कवियों के वाक्यों और कल्पनाओं को देखिए तो इस अत्युक्ति और मिथ्या प्रशंसा को यहां तक स्थान दिया गया है कि जिन्हें पहले के लोग प्रत्यक्ष सच समझ मजहबी और धर्म सम्बन्धी बात मान बैठे थे उन पर इन दिनों के नये विद्वान् और शिक्षित समाज हंसते हैं और निरी बे-बुनियाद मानते हैं। कवियों ने इस अत्युक्ति को यहां तक बढ़ाया कि काल को रावण की सेज की पाटी में बांधा। पवन, और पावक आदि प्राकृतिक पदार्थों को भी उसके घर का गुलाम बना दिया, इत्यादि। और भी कविता के ज़ोर में आये चांद को जमीन पर ला पटका और पृथ्वी के कीड़े मनुष्यों को आसमान के सातवें तबके में चढ़ा दिया; जिसमें दो गुण पाये उसमें चार दिखलाये; गुण को दोष और दोष को गुण बतलाया, जिसका फल यह हुआ कि पुराने समय का हाल जो केवल प्राचीन लेख के द्वारा मालूम हो सकता है, अत्यन्त संदिग्ध रहा और ठीक-ठीक पता किसी बात का न लगा। बहुत से लोगों का मत है कि यह अलंकारिक वर्णन है केवल ऊपर ही ऊपर देखने से दोषयुक्त प्रतीत होता है। अच्छा अधिकारी जब उसमें पैठ कर देखता है तो सब ठीक-ठीक हाल मालूम कर सकता है और इस अर्थवाद के समझने की व्युत्पत्ति मीमांसा आदि शास्त्रों के पढ़ने से होती है तब जो कुछ भ्रम साधारण बुद्धि वालों का है वह अर्थवाद के द्वारा सब दूर हो सकता है। इसलिये उसे चाटुकार व मिथ्या प्रशंसा नहीं कह सकते।

अस्तु, धर्म ग्रंथों में भी इतनी अद्भुत बातें भरी हैं कि कहीं सचाई का ठिकाना न रहा, दूसरे के धर्म को यहां तक बुरा दिखलाया कि कुछ भी उसमें भली बात न रहने दी, जिसका नतीजा यह हुआ कि जब हमें दूसरे के धर्म ग्रन्थ की कोई अच्छी बात मिली जिसे

हम अपने यहां नहीं पाते, तब हमने उन पुराने लेखों को बिल्कुल झूठा मान लिया। राजकाज में लगे हुए मनुष्यों को देखिए। लोगों ने उनको यहां तक सिर चढ़ाया कि वे अपने को भूल गये और ऐसे-ऐसे कामों का साहस करने लगे जो उनकी सामर्थ्य से बिल्कुल बाहर था और उन्होंने भी ऐसे-ऐसे कामों का साहस केवल इसीलिए किया कि आजमावें तो सही।

पार्लियामेंट में कई महाशय ऐसे हैं जो केवल लोगों की मिथ्या प्रशंसा और बढ़ावे से उस काम में तत्पर हो जाते हैं जिसमें पूरा करने की ताकत वे अपने में नहीं रखते और अन्त में अकृत कार्य हो औंधे-मुंह नीचे गिरते हैं।

परीक्षोत्तीर्ण हमारे बी० ए०, एम० ए० आदि अपने साथी और सहपाठियों की मिथ्या प्रशंसा में आप अहम्भाव की मूर्ति बन बैठते हैं। अपनी अक्ल के मुकाबिले अरस्तु, सुकरात और प्लेटो की बुद्धि और फिलासफी को हेय और तुच्छ समझ राजनीतिक, सामाजिक तथा वैज्ञानिक बड़े-बड़े सिद्धान्तों के परमाचार्य बनते हैं; किन्तु यह सब तभी तक जब तक संसार सागर की पेचीदा तरंगों में नहीं पड़ते। कालेज कंपौंड के भीतर ही भीतर बर्राया कि ये बाहर निकलते ही एक साधारण क्लर्क या रायटर भी ये सब "प्रेक्टिकल" कारवाई देख जो उनके बलन्द खयाल में कभी आई भी न थी, लजाते और खिजाते हैं। कहां ऊंचे दरजे की मेथमेटिक पिये हुए इंजीनियर बनने के इम्तिहान की तैयारी में थे, कहां यहां एक साधारण बकिंग कलर्क की-सी लियाकत भी हसाब किताब समझने की अपने में न पा पस्त हिम्मत बन बठते हैं। कालेज में जब ये गम्भीर से गम्भीर विषयों पर 'ऐसे' लेख लिखते थे और अपनी प्रशंसा करने वालों के बीच अद्वितीय विद्वान प्रसिद्ध थे। यहां कार्य

की प्रणाली में पड़ एक साधारण सौदागर के फर्म की बिल बनाने का शऊर अपने में पा मन ही मन पछताते हैं।

पुराने इतिहासकारों को लीजिए तो इसी चाटुकार ने दुर्योधन, कंस, जरासन्ध आदि को कहां तक बढ़ाया कि वे अधर्म को धर्म समझने लगे और उनसे ऐसे-ऐसे काम कराये कि जड़ पेड़ समेत इस दुनिया से उजड़ ही गये। जयचन्द और पृथ्वीराज में परस्पर फूट की सहायक भी यही थी। औरङ्गजेब के दरबार में तास्सुबी मुसलमानों के बीच यह इतना मान पाये हुए थी और औरंजेब से ऐसे-ऐसे काम कराये कि दिल्ली की बादशाहत के नेस्तनाबूद होने का बायस हुई।

अब दूकानदारों को देखिए बहुत कम ऐसे हैं जो अपनी चीजों का गुण-औगुण ठीक-ठीक बताते हैं; जिसका परिणाम यह होता है कि खरीदने वाले को ठीक पता नहीं लगता। कभी-कभी ऐसा होता है कि झूठे दुकानदारों के खरे अच्छे माल में भी मोल लेने वाले को खटका पैदा हो जाता है। यह मिथ्या प्रशंसा हमारे पत्र-सम्पादकों को भी अपने चंगुल में किये है। आदि में किसी से मंगनी मांग या आप ही बहुत कुछ दिमाग पचाय दो एक चटकीले लेख लिख, फिर वही विविध और विज्ञापन भरती कर एडीटरी की टाँग तोड़ने लगते हैं। और टाइटिल पेज में जगत भर की विद्या, विज्ञान, हास्य, परिहास, इतिहास सब बातें जितनी उन्हें ढूंढने से मिलीं, लिख दीं, जिस प्रतिज्ञा को कभी सालभर में भी एक बार पूरा न कर सके। उनके रद्दी पत्रों के ग्राहक जो न बढ़े तो पढ़ने वालों की निन्दा और शिकायत करने लगते हैं। पर अपने लच्छन पर कभी एक बार भी ध्यान नहीं देते कि लेख में लालित्य आना एक ओर रहे, शुद्ध शब्द भी लिख या बोल नहीं सकते, पर एडीटरी का हौसला भरपूर रखते हैं।

हमारे देश के अपढ़ धनियों को रिझाने तथा उनसे अपना कुछ प्रयोजन सिद्ध करने का केवल चाटुकार ही एक द्वार है। ठकुरसोहाती कहते जाइये, आप बड़े सत्पात्र और योग्य समझे जायँगे और जो कहीं उनकी दो चार झूठी तारीफ कर उनके मुकाबले दूसरों की बुराई और निन्दा कीजिए, तब तो मानो आपके समान दूसरा ऐसा सच्चा और साफ कहने वाला कोई है ही नहीं। बाणभट्ट ने कादम्बरी में एक जगह ऐसों का बहुत उत्तम वर्णन किया है– "उसी से प्रेम करते हैं, उसी से लपक कर बोलते हैं, उसी को अपने पास बैठाते हैं, उसी को बढ़ाते हैं, उसी के साथ सुख का अनुभव करते हैं, बखसीसें देते हैं, उसी को अपना मित्र बनाते हैं, उसी की बात मानते हैं, उसी का विश्वास करते हैं, जो रात दिन, प्रतिक्षण और सब कामकाज छोड़ हाथ जोड़े सामने खड़ा रहता है और देवता के समान इनकी स्तुति किया करता है।"

(१७)

चमत्कार

(स्थान—एक बड़े नगर का एक बड़ा बाजार)

समय——दिन

[रंगमंच के बायें कोने में बाइबिल सोसाइटी का महराबदार दरवाज़ा है। महराब के ऊपर सुन्दर बड़े बड़े अक्षरों में लिखा है :

"यीसू मसीह ने कहा, उठ, और कुमारी उठ बैठी।"

यह बाइबिल सोसाइटी एक बड़े खुले बाजार में है। रंगमंच के दायें कोने में बाइबिल सोसायटी के साथ की दुकान का आधा बोर्ड (जिस पर उप्पल एण्ड—लिखा हुआ) और दरवाजे का आधा भाग साफ दिखाई देता है। बाइबिल सोसाइटी और उप्पल एण्ड कम्पनी की सीमाएं स्टेज के मध्य आ कर मिलती हैं। बाइबिल सोसायटी की बिल्डिंग का रंग लाल है और दूसरी दुकान का मोतिया। दोनों दुकानों के आगे फुट पाथ है, जिस पर बिजली का एक खम्बा भी उप्पल एण्ड कम्पनी के सामने दिखाई देता है। फुट पाथ के इस ओर बाएं से दाएं अथवा दाएं से बाएं को जाने वाली तार कोल की सड़क है।

पर्दा उठने पर बाजार साधारण रूप से चलता दिखाई देता है। लोग अपने ध्यान में मग्न उधर से इधर और इधर से उधर आ–जा रहे हैं। एक फैशनेबुल लेडी उप्पल एण्ड कम्पनी के दरवाजे में प्रवेश करती है। एक डाकिया बाइबिल सोसाइटी के दरवाजे में से बाहर आता है!

कुछ क्षण बाद बायीं ओर से एक पतला-दुबला व्यक्ति सिर पर तुर्की टोपी रखे, गले में खुले गले की मैली फटी कमीज और कमर में टखनों से ऊंचा, कद्दे तंग, घुटनों पर (निरन्तर पहनते रहने के कारण) कुछ थागे को बढ़ा हुआ उटुंग पायजामा पहने, सिगरेट के एक खाली टीन के बक्स को रस्सी से खींचता हुआ प्रवेश करता है और दोनों दुकानों के मध्य आ खड़ा होता है।

निमिष भर के लिए वह राह चलते लोगों को देखता है फिर ऊंचे स्वर से बाइबिल सोसाइटी के दरवाजे पर लिखे हुए मोटो (motto) को पढ़ता है।]

तुर्की टोपी वाला—यीसू मसीह ने कहा—उठ! और कुमारी उठ बैठी। (सोसाइटी के दरवाजे की ओर देख कर) बुलाओ अपने यीसू मसीह को कि मेरी इस मुर्दा मछली को जिन्दा करे। (फिर दांत पीसते हुए मुंह चिढ़ा कर और राह चलतों को सुना कर) यीसू मसीह ने कहा उठ! और लड़की उठ बैठी। (फिर दरवाजे की ओर देख कर) बुलाओ अपने उस मसीह को कि इस मुर्दा मछली को जिलाये।

[उसकी आवाज सुन कर तीन चार राह चलते इकट्ठे हो जाते हैं, जिन में एक लम्बी चोटी वाला भी है।]

तुर्की टोपी वाला—मसीह की सब से बड़ी करामात यह थी कि वह मुर्दों को जिन्दा कर देते थे। उन्होंने जेरस की मुर्दा बेटी को

हुआ और वह उठ बैठी। तो क्यों आकर मेरी इस मुर्दा मछली को नहीं जिलाते ? (दरवाजे की ओर देख कर) निकालो अपने उस मसीह को कि मेरी इस मुर्दा मछली को जिन्दा करें।

(कुछ और लोग आ जाते हैं, जिन में एक कृपाण वाला भी है।)

लम्बी चोटी वाला— (आगे बढ़ कर) क्यों भई क्या बात है ?

तुर्की टोपी वाला—"अल मुबलग" में मैंने एक मार्के का मजमून लिखा था, जिसमें ईसाई धर्म की बुनियादी खामियों पर दलील के साथ बहस की थी। मेरे इस लेख का कोई माकूल जवाब देने के बदले (सोसाइटी के दरवाजे की ओर देख कर) पादरी बधावा राम ने अपने अखबार में रसूले पाक की करामातों पर एतराज किया है। मेराज की असलियत को समझना पादरी बधावा राम के बस की बात नहीं। कौन नहीं जानता कि खुदावन्दे करीम ने अपने रसूल को सातों आसमानों की सैर कराई और वह भी इतने कम अर्से में कि जिस दरवाजे से रसूले पाक गये थे उसकी कुण्डी उन के वापस आने पर अभी हिल रही थी। इस मोजज़े के कई मतलब निकल सकते हैं। लेकिन उन पर गौर करने के बजाय पादरी बधावा राम ने ओछे और लगव एतराज किये हैं।

कृपाण वाला—पर मियां इस टीन के डिब्बे में क्या है ?

तुर्की टोपी वाला—मछली।

कृपाण वाला—मछली !

तुर्की टोपी वाला—हां मुर्दा मछली। मैं पादरी बधावा राम को चैलेंज देने आया हूँ कि अगर सचमुच यीसू मसीह में यह ताकत थी कि वह मुर्दों को जिन्दा कर देते थे, और अगर सचमुच वह खुदा के

बेटे थे, तो पादरी बधावा राम अपने उस खुदा के बेटे को बुलाए कि वह आकर मेरी इस मुर्दा मछली को जिलाए और अपनी मसीहाई का सबूत दे।

लम्बी चोटी वाला—पादरी बधावाराम! (चोटी पर हाथ फेरता हुआ, हंसते हुए अपने पास खड़े एक दूसरे लम्बी चोटी वाले से) अरे! यह वही बधावाराम है जिसे हम ने शुद्ध किया था, परन्तु जो हमारे कठिन सिद्धान्तों पर पूरा न उतर सका था।

[पादरी बधावाराम सोसाइटी के दरवाजे से झांकते हैं।]

(पादरी की ओर देख कर) हां पादरी साहब, बुलाइए अपने खुदा के बेटे को कि वह अपना चमत्कार दिखा कर इस मृत मीन को पुनः जीवन प्रदान करे। (लोगों को सुना कर) यदि भगवान अमर और सर्व-व्यापक हैं तो भगवान का पुत्र अमर और सर्वव्यापक क्यों न होगा और क्यों न यहां आकर इस मृत मत्स्य में अपने परस से जीवन का संचार करेगा।

[कुछ और लोग भीड़ में आकर सम्मिलित हो जाते हैं। श्वेत दाढ़ी वाला एक वृद्ध चुपचाप भीड़ के एक ओर खड़ा तमाशा देखने लगता है।

एक हाथ में बेग उठाए और दूसरे में घंटी लिए सब से पीछे आ कर खड़ा हो जाता है।]

तुर्की टोपी वाला —(घंटी वाले को देख कर नारा लगाता है) आये खुदा का बेटा और मेरी इस मुर्दा मछली को जिन्दा करे।

(पादरी बधावाराम फिर अन्दर चले जाते हैं)

लम्बी चोटी वाला—(शिखा पर हाथ फेरते हुए) एक सभा में पादरी बधावा राम ने आर्य समाजियों को मूस-पन्थी कहा था। चूहे

को शिव-लिङ्ग पर से प्रसाद उड़ाते हुए देख कर महर्षि को जो स्वर्गिक प्रेरणा मिली थी, उसका उपहास उड़ाते हुए उनके व्यक्तित्व की निन्दा की थी (भाषण देने के अन्दाज में हवा में हाथ घुमाते हुए और एड़ियां उठाते हुए) महर्षि दयानन्द पूर्ण ब्रह्मचारी थे। उनके मुख पर अद्भुत अलौकिक तेज और उनके अंगों में अपार शक्ति थी। अपने योग बल से वे ऐसी आश्चर्यजनक बातें कर सकते थे, जो दूसरों को चमत्कार मालूम होती थीं। जालन्धर में टिक्का साहब की गाड़ी को उन्हों ने पीछे से पकड़ लिया। घोड़े शक्ति लगा कर थक गए। लेकिन वह तो ब्रह्मचारी का बल था, टस से मस नहीं हुई गाड़ी। चमत्कार यह होता है। इसे बुद्धि स्वीकार करती है, परन्तु ...... ।

कृपाण वाला—(जोश में आगे बढ़कर) इन्हीं पादरी साहिब ने हमारे बाबा साहिब बाबा गुरु नानक के चमत्कारों पर भी आलोचना की थी और मोदी खाने की बात को लेकर मजाक उड़ाया था। वे तो सत्यवान पुरुष थे। ननकाना साहिब के लोग इस बात को अच्छी तरह जानते हैं। गुरु साहिब के बहनोई जयगोपाल लोधी सुलतान के यहां नौकर थे। सच्चे पादशाह के पिता कालूराम ने अपने पुत्र को आवारा समझ कर जयगोपाल से कहा "भई, यह तो साधु-सन्तों की संगति में रहकर आवारा और निकम्मा हो रहा है। इसे कहीं टिकाने पर बैठाओ।" जयगोपाल ने सच्चे पादशाह की सिफारिश करके उन्हें मोदीखाने में नौकर करवा दिया। बाबा ठहरे दरिया दिल फकीर—वे क्या जानते हिसाब किताब ? जो भी उनके दरवाजे पर आता खाली हाथ न जाता। साधु-सन्त, पीर फकीर, सब मोदीखाने से मन मानी खैरात पाने लगे। होते होते ये खबर सुलतान लोधी तक जा पहुँची कि तुम्हारा तो मोदीखाना ही लुटा जा रहा है। बस सुलतान ने जांच पड़ताल का आदेश दिया। मोदीखाने का हिसाब होने लगा। गुरु साहिब तराजू लेकर तोलने लगे। एक—दो—तीन—

चार..... तेरह पर जा कर रुके, आगे गिनने के बदले उन्होंने......
तेरह......तेरा......मैं तेरा......मैं तेरा का पाठ शुरु कर दिया ! सारा मोदीखाना तुल गया और जितना गुरु साहिब के चार्ज में दिया गया था, उससे भी अधिक निकला। (दरवाजे की ओर देखकर) पादरी बधावाराम एक जलसे में कह रहे थे—यह कैसे सम्भव हो सकता है ? मैं उन से पूछता हूँ, यीसू मसीह ने किस तरह रोटी के दो टुकड़ों और तीन मछलियों को बरकत देकर उन से अपनी सहस्रों भेड़ों की भूख मिटाई थी और सब खा चुकने पर भी छः टोकरे भर रोटियां और मछलियां बच रही थीं।

तुर्की टोपी वाला—(नारा लगाता है) आये मसीह और मेरी इस मुर्दा मछली को जिन्दा करे !

घंटी वाला—(घंटी बजाता और भीड़ को चीर कर आगे आता हुआ) मैं मछली जिन्दा करता हूं ! मैं मछली जिन्दा करता हूँ।

(लोग चकित से उसकी ओर देखते हैं)

—(पूर्ववत् घंटी बजाता हुआ और आगे बढ़ता हुआ)
मैं मछली जिन्दा करता हूँ ! मैं मछली जिन्दा करता हूं ! !

[भीड़ के मध्य आकर यही आवाज लगाता हुआ घूमता है, जिस से एक छोटा सा घेरा बन जाता है। तुर्की टोपी वाले मियां साहिब और घंटी वाले महोदय इस घेरे के मध्य रह जाते हैं।

घंटी वाले ने महीन मलमल का कुर्ता पहन रखा है, जिस में से तनपात झलक रही है। कमर में महीन धोती बांध रखी है। पांव में बढ़िया चम-चमाते पम्प शू हैं। शरीर हृष्ट-पुष्ट और मूँछें लम्बी और नोकों पर ऊपर को मुड़ी हुई हैं। आँखों में ऐसी चमक है जो उसके चातुर्य का पता देती है। उसकी तुलना में तुर्की टोपी वाला मात्र एक भिखारी दिखाई देता है।

घंटी वाला घेरे के मध्य अपना बैग रख देता है और एक बार फिर घंटी बजाता हुआ घेरे में चक्कर लगाता है।

घंटी वाला—मैं मछली जिन्दा करता हूँ, मैं मछली जिन्दा करता हूं, मैं मछली जिन्दा करता हूँ ! (क्षण भर केवल घंटी बजाता है) इसी क्षण आप के देखते-देखते इस मछली को, इस मृत मछली को जीवित कर दूंगा, केवल मुझ पर भरोसा रखिये—मुझ पर विश्वास रखिये !

श्वेत दाढ़ी वाला— (जैसे अपने आप से) हम लोगों में विश्वास ही का तो अभाव है।

घंटी वाला— (एक बार फिर घंटी बजाता हुआ) लेकिन मेहरबान इस से पहले कि मैं इस मरी हुई मछली को जिलाऊं, मैं मरे हुए इन्सानों में जान डालना चाहता हूँ। मेहरबान मनुष्य उस परमात्मा, उस वाहे गुरु, उस खुदा की दृष्टि में सब से बड़ी, सब से उत्तम रचना है। उसके प्राण सहस्रों—सहस्रों ही नहीं, लाखों मछलियों के प्राणों से मूल्यवान हैं। मछली को जिलाने से पहले मैं उन मृत-प्राय इन्सानों को जिन्दा करना चाहता हूं।

कृपाण वाला--इन्सानों को !

घंटी वाला—मेहरबान ! आज जिन्दा इन्सान कहां हैं ? सौ में से किसी एक के चेहरे पर जीवन की झलक दिखाई देगी—पीले जर्द चेहरे, थकी उदास आंखें, सूखे बदे ठठरी से शरीर। ये जीते जागते इन्सान हैं ? मेहरबान, ये चलते फिरते मुर्दे हैं। वह दम खम, वह बल-वीर्य, वह साहस और हिम्मत अब कहां है ? (घंटी बजा कर) और मेहरबान, ऐसा क्यों न हो ? आज वही चीजें हमारी पहुँच से बाहर हैं जो हमारे जीवन के लिये अत्यधिक जरूरी हैं। (और भी ऊंचे स्वर में छाती पर हाथ रखते हुए) मेहरबान ! कितने लोग हैं जो सीने पर

हाथ रख कर कह सकते हैं कि वे पवित्र दूध और घी प्रयुक्त करते हैं। खालिस दूध-घी जनता के लिए ऐसी नियामत बन गया है जिस का पता परलोक में सम्भव हो तो हो, इस लोक में नहीं।

श्वेत डाढ़ी वाला—सच है भाई, सच है !

[बाजार चलता रहता है, कुछ लोग आते और कुछ जाते रहते हैं।]

घंटी वाला—दूध-घी दूर, हमें तो स्वच्छ जलवायु भी प्राप्त नहीं। यह मछली मुर्दा है। क्यों ? इसलिये, कि यह पानी के बाहर है। इसे इसका भोजन प्राप्त नहीं। हममें अधिकांश जीते जी मुर्दा हैं। क्यों ? इसलिए कि हमें हमारी खुराक प्राप्त नहीं। गावों में जाइए ! अब भी आपको छः छः सात-सात फुट ऊंचे, ३६—३७ इंच चौड़े सीनों वाले जवान मिलेंगे। स्वच्छ वायु, पवित्र दूध-घी और निर्मल पानी—कौन है माई का लाल जो सीने पर हाथ मार कर इस बात का दावा कर सकता है कि उसे ये सब प्राप्त हैं।

[श्वेत डाढ़ी वाले वृद्ध प्रभावित होकर सिर हिलाते हैं कि ठीक है भाई तू जो कह रहा है, सच कह रहा है।]

(फिर घेरे में चक्कर लगाता है)

—मैं मछली जिन्दा करता हूँ ! मै मछली जिन्दा करता हूँ ! !

(फिर अपने स्थान पर खड़े होकर घंटी बजाते हुए) मियां साहिब इस मछली को मेरे सामने ले आइए !

(मियां साहब बक्स को खींच कर उसके सामने लाते हैं)

—हां मेहरबान। इस मैदान में इस मछली को रख दीजिए ! मैं पलक झपकते, आपके देखते देखते, इसे जीवित कर दूंगा। ऐसी

ऐसी औषधियां गुरु महाराज ने तैयार कीं कि प्रायः मरते मरते लोग उठ खड़े हुए। सांप काटे की एक अचूक औषधि मेरे पास है। मालवे और माझे के ऊपर इलाकों में बीसियों हृष्ट-पुष्ट जाट हर साल सांपों का शिकार हो जाते थे। गुरु महाराज के आदेश पर मैंने एक बार वहां जाकर दवा बाँटी। क्या मजाल जो पिछले दस वर्ष में सांप काटे से एक भी मौत उन इलाकों में हुई हो। (बैग से एक नीली सी टिकिया निकालता है) मेहरबान! जिस तरह लोहा लोहे से कटता है, उसी प्रकार विष का प्रभाव भी विष ही से दूर होता है! गुरु महाराज कहा करते थे—विष के मारने को विष महाबली है—इसी-लिए उन्होंने कई तरह के ज़हरों को सांप के विष में खरल करके दिन रात के परिश्रम के बाद, यह टिकिया तैयार की। जहां कहीं सांप, बिच्छू, कन खजूरा, मधुमक्खी, भिड़ या कोई दूसरा विषैला जानवर काट जाए, थूक अथवा पानी में घिस कर इसे लगा दीजिए। मिनटों में जहर का असर दूर हो जायेगा। (चुटकी बजाता हुआ) जिस भाई को जरूरत हो हाथ खड़ा करे। गुरु महाराज ने कहा था—बेटा जीवन देना, पर दाम न लेना! इस टिकिया का मूल्य लेना मेरे लिए महापाप है! (बैग से चन्द और टिकियां निकालता है) जिस जिस भाई को आवश्यकता हो हाथ खड़ा करे!

[टिकिया बांटने लगता है। धीरे-धीरे सब के सब हाथ खड़े कर लेते हैं।]

(रुक कर) आप सब लोगों ने हाथ खड़े कर दिये? (छोटे छोटे दो लड़कों की ओर देख कर) यह कोई मिठाई की टिकिया नहीं, जहर की टिकिया है।

[लोग हंसते हैं—लड़के लज्जित हो कर हाथ नीचे कर लेते हैं।]

मेहरबान! इस तरह काम नहीं चलेगा। उन लोगों को, जिन्हें दवा की जरूरत है, दूसरे लोगों से अलग करने का एक गुर श्री गुरु

महाराज हमें बता गए हैं। (चुटकी बजाते हुये) देखिये मेहरबान! इस टिकिया का मूल्य चार आने है। मनुष्य के प्राणों का मूल्य लाखों रुपये से भी अधिक है, किन्तु इन प्राणों को बचाने वाली इस टिकिया का मूल्य सिर्फ चार आने हैं। गुरु जी ने कहा था—बेटा जीवन देना पर दाम न लेना। मित्रो! यह चार आने दाम नहीं, केवल लागत है।—इस टिकिया की कीमत सिर्फ चार आने है। अब जिन महाशयों को जरूरत हो हाथ खड़े करें।

[कुछ लोग हाथ गिरा देते हैं। कुछ इस असमंजस में हैं कि हाथ खड़ा रखें या न रखें। उन्हीं को सम्बोधित करके .....]

—चार आने। इस टिकिया के दाम मात्र चार आने हैं। जिन्हें जरूरत हो सिर्फ वही हाथ खड़ा रखें।

[केवल पांच छः व्यक्ति हाथ खड़ा रखते हैं शेष गिरा देते हैं]

—लाइए जनाब चार-चार आने! (पैसे इकट्ठे करते हुए) लेकिन हाथ खड़े रखिएगा मेहरबान।

[सब पैसे इकट्ठे कर लेता है और एक विचित्र उदारता से मुस्कराता है]

—(हाथ के पैसों को देखते हुए) देखिए जिन मेहरबानों को जरूरत थी, उन्होंने मूल्य देकर भी दवा खरीद ली। मित्रो! आपको सचमुच जरूरत है। लीजिए पैसे भी लीजिए और दवाई भी लीजिए।

[जिन जिन लोगों ने पैसे दिए थे, उनको पैसे और टिकिया दोनों चीजें वापस कर देता है।]

—(फिर अपनी जगह आकर उसी उदार मुस्कान के साथ) गुरु महाराज ने कहा था—पुत्र! जीवन देना पर दाम न लेना! (जोर

से घंटी बजाते हुए) हां तो मियां जी आप ही इस मछली को लाये हैं न ?

तुर्की टोपी वाला—जी, मैं ही लाया हूँ।

घंटी वाला—जिन्दा लाए थे या मुर्दा ?

तुर्की टोपी वाला—मुर्दा !

घंटी वाला—(एक विचित्र आत्म विश्वास के साथ) देख लीजिए जिन्दा तो नहीं होगई।

तुर्की टोपी वाला—(मछली को उठा कर फिर वहीं रखते हुए) नहीं जी मुर्दा है ।

घंटी वाला—(भीड़ को सम्बोधित करके) मेहरबान ! गुसाईं तुलसीदास जी कह गये हैं-"जो गुरु मिले विरंच सम मूरख हृदय न चेत"—कारण क्या है मेहरबान ? यही कि मूर्ख को अपनी बात के अतिरिक्त किसी दूसरे की बात पर विश्वास नहीं होता और अक़्ल मंदां रा इशारा काफ़ीस्त ।" (घंटी बजाता हुआ दायरे में चक्कर लगाता है) विश्वास कीजिए मेहरबान, वह मछली जो इस समय इस टीन के डिब्बे में निस्पन्द और निष्प्राण पड़ी है, जीवन के स्पन्दन से फड़क उठेगी। स्वयं गुरु महाराज अपनी जवानी में एक बार इसी मछली की तरह निष्प्राण होगये थे । हकीमों-डाक्टरों से निराश होकर वे पहाड़ों की ओर निकल गये थे कि सम्भव है उन्हें कोई पहुँचा हुआ संन्यासी मिल जायं तो उनकी आशा पूरी हो। सितम्बर १८४२ की बात है मेहरबान ! वे गढ़वाल के प्रसिद्ध नगर करण प्रयाग में पहुँचे । वहां एक समय में उन्हें एक देवता-स्वरूप साधु के दर्शन हुए, जिन्होंने न केवल उन्हें पुनः जीवन दान दिया, बल्कि आयुर्वेद में वह श्रद्धा प्रदान की कि बाद में गुरु महाराज ने जनता की सेवा

के हेतु संन्यास धारण कर लिया और हजारों बल्कि लाखों रोगियों को शक्तिशाली बना कर उन्हें दोबारा जीवन की होड़ में बाजी मारने के योग्य बना दिया। (बाइबिल सोसाइटी की महराब पर लिखे हुए वाक्य को देख कर) यीसू मसीह ने कहा—उठ; और कुमारी उठ खड़ी हुई ! शायद उनके हाथ में, उनके परस ही में मसीहाई थी, उनके छूने ही से मुर्दे जी उठते थे। लेकिन यह भी कौन कह सकता है कि उनके पास कोई ऐसी ही अचूक औषधि न होगी जिससे मुर्दे तक जीवित हो उठें ? ऐसी ही औषधि उस बर्फ सी सफेद दाढ़ी वाले बूढ़े साधु ने गुरु महाराज को प्रदान की। (बैग से सुनहरी गोलियों की एक शीशी निकालता है) यह वह अचूक औषधि है ! (घंटी बजा कर) गढ़वाल की यात्रा की याद में गुरु महाराज ने इनका नाम "गढ़वाली" गोलियां रखा है। इन गोलियों के सेवन से स्वयं गुरु महाराज न केवल १०२ वर्ष तक जीवित रहे, बल्कि वृद्धा-वस्था में भी उनकी आंखो की ज्योति इतनी तीक्ष्ण थी कि दस फुट तो क्या बीस फुट के फ़ासिले से चार्ट पढ़ सकते थे और उनकी बतीसी मरते दम तक कायम रही (जोर-जोर से घंटी बजाता है) न केवल यह, बल्कि गुरु महाराज ने असली नुस्खे में और कई औषधियां मिला कर इसे सब तरह की कमजोरियों के लिए लाभदायक बना दिया है। सिर या शरीर में चोट लग जाए और मनुष्य दुर्बलता महसूस कर रहा हो आंखों में अंधेरा छाया जा रहा हो और बेहोशी की हालत तारी हो। मेहरबान ! गर्म दूध में एक गोली घोल कर दीजिए, तत्काल शक्ति की लहर-सी शरीर में दौड़ जाएगी ! काम के आधिक्य या गिज़ा की कमी के कारण दिमाग कमजोर होगया हो, रात को नींद न आती हो, स्मरण शक्ति मन्द पड़ गई हो, चीजें रख कर भूल जाते हों; मस्तक में हल्की हल्की पीड़ा रहती हो, स्नायु कमजोर हो, गये

हों—सात दिन प्रातः सायं दूध के साथ इन गढ़वाली गोलियों का सेवन कीजिए और फिर देखिए कि यह औषधि मसीहाई का असर रखती है या नहीं। फिर वे लोग जिन्हें जीवन से, सौन्दर्य से उपेक्षा होगई हो; कमजोरी का घुन जिन्हें अन्दर ही अन्दर खाये जाता हो, यदि प्रातः सायं इस टानिक का प्रयोग करें तो उनकी सब शिथिलता २१ दिन में दूर हो जायगी। जीवन उन्हें सुन्दर और प्रिय लगेगा और जीने को उनका जी चाहेगा (बेग से और शीशियां निकालते हुए) गुरु महाराज का कथन है—बेटा जीवन देना पर दाम न लेना। मेहरबान ! मेरे पास इस रसायन की केवल कुछ शीशियां ही शेष रह गई हैं। जिन भाइयों को जरूरत हो, हाथ उठाएं।

(बहुत से लोग हाथ उठा देते हैं)

—(हंसता है) आप सब लोगों को जरूरत है। काश मेरे पास इतनी शिशियां होतीं ! आप लोगों में से जिनको अत्यधिक आवश्यकता हो, वही हाथ खड़ा रखें। नहीं तो किसी को भी न मिलेगी।

(कुछ हाथ गिर जाते हैं)

—(एक दृष्टि उठे हुए हाथों पर डाल कर) नहीं, अभी नहीं ! मित्रो ! मेरे पास बहुत कम शीशियां हैं। जिन्हें बेहद जरूरत हो वही हाथ खड़ा रखें।

(दो चार हाथ और गिर जाते हैं)

—मेहरबान ! मुझे गुरु महाराज का बताया हुआ गुरु आजमाना पड़ेगा। जरूरत वालों को दूसरों से अलग करने का ढंग गुरु महाराज ने मुझे बता रखा है (घंटी को एक बार जोर जोर से बजा कर) इस जीवनदायिनी दवा की एक शीशी का मूल्य एक रुपया है—एक

पखवारे की दवा—तीस गोलियाँ इस शीशी में बन्द हैं। अब जिस भाई को जरुरत हो हाथ खड़ा करें।

(कुछ हाथ गिर जाते हैं)

एक रुपया ! इस जीवन दायिनी औषधि की कीमत सिर्फ एक रुपया !! (एक देहाती नव युवक से) क्यों बे तेरे पास रुपया है ?

(खिसियानी सी हंसी के साथ नवयुवक हाथ नीचे कर लेता है।)

(शेष को गिनता हुआ) एक दो तीन चार... दस ! ओह ! शीशियां मेरे पास केवल नौ हैं। (चोटी वाले से) क्यों ब्रह्मचारी जी आप को क्या आवश्यकता पड़ गई ?

चोटी वाला—(खिन्न हो कर) मेरे एक मित्र को चाहिए।

घण्टी वाला—(जैसे अपने आप से) गुरु महाराज ने कहा था—बेटा जीवन देना पर दाम न लेना। (जोर से) यह एक रुपया इन गोलियों की कीमत नहीं, सिर्फ लागत है। गढ़वाल के पहाड़ों से अनमोल जड़ी-बूटियां मंगा कर यह दवाई तैयार की गई है। जनता के लाभ के हेतु इसे मात्र लागत पर बांटा जा रहा है (एक बार जोर से घण्टी बजाता हुआ दायरे में चक्कर लगाता है) जीवन दायक, शक्तिवर्द्धक इन तीस गोलियों का मोल केवल एक रुपया है (क्षण भर चुप खड़ा रहता है) मैं एक बार फिर कहता हूँ, इस बार रुपया वापिस नहीं किया जायगा।

(कोई हाथ नीचे नहीं गिरता)

तो लाइये एक रुपया !

(रुपये इकट्ठे करता है)

जिन मेहरबानों ने रुपया दिया है वे कृपा कर अपने हाथ खड़े रखें (तुर्की टोपी वाले से) मियां जी देखिए इस बेग में फकत एक

शीशी हो (श्रोताओं से) मैंने अपने लिए रख छोड़ी थी, परन्तु मेरे गुरु महाराज कहा करते थे—बेटा किसी दूसरे की जान बच रही हो तो अपने प्राणों का मोह न करना।

[मियां जी शीशी निकाल लाते हैं और वह सब शीशियां बांट देता है]

मेहरबान मैं आप लोगों का कृतज्ञ हूँ कि आपने इतना समय मुझे दिया। भगवान से मेरी यही प्रार्थना है कि यह संजीवनी आप को शीघ्रातिशीघ्र स्वास्थ्य लाभ दे।

(बैग उठा कर चलने को होता है)

लम्बी चोटी वाला—(शीशी को एक बार इधर उधर से देख कर) परन्तु मुझे तो यह औषधि नहीं चाहिए।

कृपाण वाला—लेकिन भाई वह मछली।

घण्टी वाला—(जाते जाते रुक कर) गढ़वाली गोलियां पत्थर तक में जान पैदा कर सकती हैं, फिर मछली तो चीज ही क्या है, लेकिन मेहरबान, मछली दूध के साथ गोलियां नहीं निगल सकती। मियां जी! चलिए, इसे हमारे औषधालय में ले चलिये, वहां हम नदी का स्वच्छ जल मंगायेंगे और यदि परमात्मा ने चाहा तो इसे अवश्यमेव जीवन प्रदान करेंगे।

[आगे आगे घण्टी वाला बैग उठा कर चलता है और पीछे पीछे क्रीटदास की भाँति मियां जी हो लेते हैं]

लम्बी चोटी वाला—(कुर्ते की आस्तीनें चढ़ाता हुआ) मैं इस लुटेरे को मजा चखा दूंगा।

[सर्व पदार्थ उनके पीछे चला जाता है। भीड़ छंट जाती है। रंग मंच पर केवल श्वेत दाढ़ी वाला वृद्ध रह जाता है। कुछ क्षण

बाइबिल सोसायटी के मोटो को देखता रहता है, फिर जैसे अपने आप मुस्कराता है।]

श्वेत डाढ़ी वाला---विश्वास उत्पन्न करने की आवश्यकता है। चमत्कार क्या आज नहीं हो सकते ?

(पर्दा सहसा गिर जाता है।)

— श्री उपेन्द्रनाथ अश्क

[‘चरवाहे’ से]

(१८)

पेट की कहानी

मैं पेट हूँ संसार का आदि जनक, संसार को गतिशील रखने वाला, संसार के सिर पर जादू बनकर बोलने वाला ।

मज़दूर दिन–रात दुर्धर्षपरिश्रम करता है, किसके लिये ? किसान दिन–रात खटते हैं, किसके लिए ? घर से बाहर जाकर लोग किसी को सलाम बजाते हैं, घर के अन्दर लोग चर्खा कातते हैं; मन्दिर में जाकर पूजा करते हैं; लड़के पढ़ते हैं और शिक्षक पढ़ाता है; कवि कविता करता है और वैज्ञानिक नये-नये अनुसन्धान करते हैं– सबके-सब मेरी ही समस्या को हल करने के लिए।

'अगर मैं न होता तो किसी को हाथ पैर हिलाने की जरूरत न होती।' संसार के हर काम का लक्ष्य मेरी समस्या को हल करना है। सब मेरे लिए परेशान रहते हैं। मेरे इस कथन पर उस दिन एक देशभक्त चिढ़ गया था। वह बोला 'वह देखेगा कि पेट की समस्या किस तरह से उसको परेशान करती है ? वह भूख को जीतेगा और वतन के लिए मरेगा।' मेरे वकील ने उससे पूछा 'वतन के लिए मरने का मतलब ?'

वह बोला, 'देश की आजादी के लिए अपने को कुर्बान कर देना।'

मेरे वकील ने फिर सवाल किया, 'आजादी आने से क्या होगा ? गुलामी रहेगी तो क्या है ?'

वह बोला, 'आजादी के आजाने से लोग भूखे नहीं मरेंगे, देश में अकाल नहीं पड़ेगा। पर्याप्त अन्न-वस्त्र मिलेगा, पढ़ने लिखने की सुविधा होगी।'

मेरा वकील बोला, 'तो यह कहो कि अपने पेट के लिए नहीं, तुम देशवासियों के पेट को भरने के निमित्त मरने जा रहे हो। पर इस क्रिया में भी तो आखिर पेट ही की समस्या प्रधान है।'

वह लज्जित होकर बोला 'ठीक है।'

दूसरे ने नये ढंग से बहस शुरू की, 'खाने-पीने में खुशहाल, वंश की चिन्ता से भी मुक्त मैंने एक ऐसे आदमी को परेशान देखा है एक मकान बनाने के लिए। फिर यह कैसे सही है कि सब पेट के लिए परेशान हैं ?'

मेरे वकील ने कहा—'मकान किस लिए ? वह बोला 'अपने रहने के लिए।'

वकील—पेड़ के नीचे क्यों नहीं रह लेता ?'

वह—'रहने का ही तो सवाल नहीं है न ? सामान वगैरह अगर पेड़ के नीचे रहेंगे तो चोरी हो जाने का भय है। अन्न, कपड़ा इत्यादि जीवन के लिए जो आवश्यक सामान है उनके रखने का भी तो प्रबन्ध करना पड़ता है।'

वकील साहब—'अन्न क्यों रखना पड़ता है ?'

वह—'खाने के लिए।'

वकील साहब—'तो फिर मकान बनाने की तह में भी तो पेट की ही समस्या आ गई। क्यों, क्या मैं ग़लत कह रहा हूँ ?'

उसने कहा—'ठीक ही कह रहे हैं, यों इस विवाद का भी अन्त हो गया।

आपसी मुकदमों में व्यक्तिगत पेट का प्रश्न है, बंगाली-बिहारी के सवाल में प्रांतों का पेट बोल रहा है और विश्व समर का कारण है राष्ट्रों का पेट !

इस पर एक यों बोला, "एक ऐसे आदमी की मिसाल दे सकता हूं जो भरपूर धन का मालिक था और इस चिन्ता से बिलकुल मुक्त, बिलकुल मुक्त था ! बेटे भी थे जो पढ़ रहे थे, इसकी भी उसको पर्वाह नहीं थी। मकान भी उसका अच्छा था और सामानों से भरा था। तब भी वह दिन-रात दूसरों की सेवामें लगा रहता था। और इस सेवा, इसकी भलाई या इसकी रोटी का ख्याल नहीं था बल्कि अपनी प्रसिद्धि का ख्याल था, वह खूब नाम हासिल करना चाहता था। फिर यह कैसे कहा जाय कि वह पेट के लिए परेशान था ?

मेरे वकील ने कहा—"आपने अच्छा नमूना पेश किया। भाई, भूख संसार में प्रबल है। भूख पैदा होती है पेट से। किसी को अन्न की भूख है, किसी को धन की भूख; और कोई यश का भूखा होता है। वह यश का भूखा था। वह यश से ही अपना पेट भरना चाहता था। पेट न होता तो यह भूख भी न होती। आया समझ में ?"

इसने भी सिर हिला कर 'हां' का इशारा किया और मौन हो गया।

असल में जैसे दुनिया गोल होती है वैसी ही मेरी समस्या भी गोल है। इस समस्या को लेकर मनुष्य चाहे जिस मार्ग से चले अन्ततः वह इसी समस्या पर पहुँच जायगा।

बुद्धि रूपी घोड़ों के लिए मैं एक सवार की तरह हूँ जिसके कड़ा लगाम के इशारे और सटासट सोटियों की मार से वह नाचती रहती

है, विवेक रूपी हाथी के लिए मैं फीलवान की तरह हूँ जिसके अंकुश के संकेत और जबान के हुक्म से वह उठता बैठता है; प्रेम के खिलौने के लिए मैं उस बच्चे की तरह हूं जो उसे रोज खरीदता और तोड़ता है ।

बुद्धि कहती है, पण्डित ! चोरी मत कर बल्कि भूखा रह जा ! मैं कहता हूं भूखा मत रह चोरी करके पेट भरले । पण्डित वही करता है, जो मैं कहता हूं ।

विवेक कहता है—विचारक ! किसी का गला मत काट, भूखा रह, अपनी साधना में रत रह । मैं कहता हूं—विचारक ! भूखा मर जायगा तो साधना क्या खाक होगी ? गला काट, पहले भूख बुझा, पीछे साधना कर । विचारक भी वही करता है, जो मैं कहता हूं ।

दुनिया के लोग कहते हैं पहले मनुष्य को सिर्फ पेट ही था; पीछे से दिमाग मिला जिसमें वह आसानी से मेरे भरने का उपाय करे । मैं समझता हूं दिमाग लोगों को पहले से था, पर उस दिमाग को काम में लाकर देवत्व की ओर बढ़े जा रहे थे । देवताओं ने अपने आसन के छिन जाने के भय से लोगों को पेट दे दिया और बोले— "इधर कहां आते हो ? पहले इसकी फिक्र करलो ।" लोग मेरी ही चिन्ता में परेशान रहने लगे, देवस्थल का मार्ग भूल गया । देवता बनना तो दूर रहा, देवताओं के आगे इसलिए हाथ जोड़े जाने लगे कि दोनों शाम दाल-रोटी जुटती रहे ।

मेरी मजबूती से आदमी मजबूत है और मेरी कमजोरी से आदमी कमजोर है । जिसको मैं प्यार नहीं करता, उसके पास मेरा पूरा जी नहीं लगता और जिसके पास मेरा जी नहीं लगता उसका प्रभाव हर प्रकार से कम हो जाता है । मेरा जी नहीं लगने से आदमी को भोजन नहीं पचता और वह दिन-दिन कमजोर होता

जाता है। मेरा जी नहीं लगने से आदमी को बात नहीं पचती और समाज में वह नित्य हलका हो जाता है। भात और बात के न पचने से आदमी का वजन कम हो जाता है।

यह स्पष्ट है कि मानव जीवन में मैं आसुरी तथा पाशविक शक्तियों का प्रतिनिधित्व करता हूं। ऋषियों और मनस्वियों ने मेरे साथ कई बार भिड़ने की कोशिश की है और निराहार तपस्या के जरिये उन्होंने यह उपयोग किया है कि आहार पर विजय प्राप्त करें; पर उनके लिए कुछ न हो सका। 'बुभुक्षितः किं न करोतिपापम्' के श्लोक द्वारा पण्डितों ने एक स्वर से मेरी जय की घोषणा की है और मेरी शक्ति का आदर किया है।

मैं आदमी को अपने लिए किसी भयानक पाप में प्रवृत्त होने का हक़ देता हूं। जहां तक मेरे साथ रहता है और मेरी ओर देखता है मैं उसका साथ देता हूं। पर दिमाग का सहारा लेकर मनुष्य जब मेरे प्रबन्ध के बाद भी भण्डार बनाने की कोशिश करता है तो मैं उस पर रुष्ट होता हूं और मेरे रुष्ट होने के बाद क्रांति होती है जिसमें मेरे अनन्य भक्त हाथ बटाते हैं और भण्डार कायम करने की चेष्टा करने वाले बादशाह मिल-मालिक, जमींदार सब चौपट हो जाते हैं। मेरी प्रेरणा न होती तो भूखों की बारात गढ़ पर कैसे टूटती और क़िला कैसे टूटता?

इस प्रकार से मुझ में यह विरोधा-भास है कि व्यक्तिगत स्वार्थ की चरम सीमा को भी जब मनुष्य मेरी अंधभक्ति में पार करने लगता है तो सामूहिक स्वार्थ का साथ देकर मैं उसके दुर्ग को ध्वंस कर देता हूं। क़िला बनाने की सलाह देने वाला भी मैं और क़िले को तोड़ने वाला भी मैं।

पाप का मूल मैं हूँ और पुण्य का रहस्य भी मैं ही!

—कामताप्रसादसिंह

(१६)

अतीत के चल चित्र

भारी ढक्कन से ढके दीपक के समान आकाश में बिजली बुझ गयी थी। सन्ध्या से ही हवा बादलों की तह पर तह जमाने में व्यस्त रही और अब वे इतने सघन हो उठे कि रात छाया रूपों के उपयुक्त ही एक अखण्ड, पर अपनी आर्द्रता से रिसती हुई काली शिला की छत बन गये।

मेरा मन भी बुझा-बुझा सा हो रहा था। मैं अपने पढ़ने-लिखने के बाहर वाले छोटे कमरे में मेज पर सिर रख कर दर्द भुलाने की असफल चेष्टा कर रही थी। छात्रावास में टाइफाइड में पड़ी सुदूर दक्षिण की एक बालिका का मुख मेरी बन्द पलकों में किसी फोटो के इन्लार्जमेंट के समान बढ़ता चला जाता था। उसके साधारण स्थिति वाले माता-पिता इतना रुपया किस प्रकार पाते कि उसे देखने आ सकते! उसके लिए मन जैसे-जैसे चिन्ताकुल होने लगा, वैसे-वैसे अपने ऊपर झल्लाहट बढ़ने लगी।

जब मेरा शरीर इतना निकम्मा था कि इनके सुख दुःख में दो चार रात जागना भी सहज नहीं, तब किस बूते पर मैंने इन बालिकाओं को उनकी माताओं से इतनी दूर ला रखा है? जब अभी तक मनुष्य बनने की स्वयं मेरी ही साधना पूर्ण नहीं हुई तब इन बालिकाओं को

मनुष्य बनाने का भार लेने का मुझे हौसला कैसे हुआ ? ऐसे दम्भ को अक्षम्य अपराधों की कोटि में ही स्थान मिलना चाहिये। सहसा बाहर बरामदे में किसी की पैछड़ ने मेरी विचार-शृंखला भंग कर दी।

दो-चार मिनट किसी के पुकारने की प्रतीक्षा करके पूछना ही पड़ा—कौन ? उत्तर में एक सुडौल गोरे हाथ ने कुछ बढ़ कर परदे को हिला-सा दिया। एक सभीत स्त्री कण्ठ ने रुक-रुक कर प्रश्न किया, 'क्या भीतर आ सकती हूं ?' 'आइये'—कहते समय मेरे स्वर में ऐसी उदासीन शिष्टता थी कि आने वाली के पैर बाहर एक बार ठिठक से रहे, पर क्षण भर ही, क्योंकि दूसरे क्षण ही वह नीले परदे की पार्श्व भूमि पर एक रंगीन चित्र-सी बन गयी।

गहरे काही रंग की पतली ऊनी चादर में समा न सकने के कारण वर्षा की नन्ही-नन्ही बून्दें ऊपर ही जड़ी सी थीं जो बिजली के आलोक में हीरे की चूर सी झिलमिलाने लगीं। चादर उतार कर जब वह मेरी दृष्टि का अनुसरण करती हुई सामने की कुर्सी पर बैठ गयीं, तब मेरी कुछ विस्मय और कुछ जिज्ञासा भरी दृष्टि उस मुख की रेखा-रेखा में न जाने किस शब्द हीन उत्तर की खोज में भटकने लगी। आंखों के आस-पास लटकती हुई दो-तीन छोटी-छोटी लटों के छोरों में हिलती हुई पानी की बून्दें पारे-सी जान पड़ती थीं। सफेद साड़ी के कुछ धबीले बैंजनी किनारे से घिरा मुख सुडौल गोरा, पर बहुत मुरझाया हुआ सा लगा। नाक के अग्रभाग की लाली हाल ही में पोंछे गये आंसुओं की सूचना दे रही थी—पलकों की कोरें शायद रोने से ही कुछ-कुछ सूज आई थीं, जिन से उनकी मर्मस्पर्शी व्यथा और भी गहरी हो उठी थी। ओठ इतने सूख रहे थे कि उन्हें आर्द्र करने का प्रत्येक प्रयास अपनी एक रसता में भी एक नयी थकान का आभास देता जाता था। मैं स्वयं बहुत क्लान्त थी इसी से उसके कुछ कहने की प्रतीक्षा में रुकी रही। परन्तु जब उसने

अपना सिर और अधिक नीचा कर लिया और आंख से ढुलका हुआ एक आंसू उसकी गोद में गिरने से पहले प्रकाश में एक उजली रेखा-सा चमक गया तब मुझे ध्यान आया कि मेरे सामने बैठी हुई यह स्त्री न जाने कौनसी व्यथा मुझे सुनाने आई है। इतनी घिरी घटा और बून्दा-बांदी में इसका घर से निकलना ही प्रमाणित किये देता है कि इसकी आवश्यकता कल तक भी नहीं टाली जा सकती थी।

मैंने कुछ उनींदे भाव से असंख्य बार पूछा हुआ और अति परिचय से पुराना प्रश्न ही पूछ लिया होगा, परन्तु 'मुझे कोई काम दीजिये' में उत्तर पाकर मैं मानो जाग कर सतर्क हो बैठी। काम और योग्यता सम्बन्धी प्रश्न आवश्यक होने पर भी उपस्थिति के लिये निष्ठुर जान पड़े! मेरी कठिनाई का समाधान उसने स्वयं ही कर दिया। वह हिन्दी जानती है......'गाना भी' कहने के पहले उसका सम्पूर्ण शरीर संकुचित हो उठा और कहने के उपरान्त स्फीत होता जान पड़ा, मानो कोई कठिन काम समाप्त कर लिया हो।

कथा और आगे बढ़ी। उसके पति डेढ़ वर्ष से बीमार हैं... दवा दारू में सब कुछ स्वाहा हो चुका है। गहने के नाम से उसकी उंगली में चार माशे-भर सोने का एक छल्ला शेष है। पति का एक मात्र उपहार होने के कारण इसे बेचने का विचार ही उसे क्लान्त कर देता है और बेचकर भी कै दिन चलेगा...यदि कोई काम न मिल सका तो वह स्वयं भूखी रह कर मरने से भी नहीं डरती पर... और उसका गला भर आया। पलकों की कोर तक आए हुए आंसुओं को भी रोक लेने का उसे अभ्यास था। इसी से जिस वेग से उसका शरीर बेंत के समान कांप उठा था, उस से मात्रा में कुछ अधिक संयम ने आंखों की सजल निस्तब्धता को पिघलने नहीं दिया।

सान्त्वनासूचक कोई उपयुक्त शब्द मुझे खोजने पर भी नहीं मिल सका और तब उसके माता-पिता, सास-ससुर आदि के सम्बन्ध

में जिज्ञासा प्रकट कर मैं अपने आवेग को छिपाने लगी। स्त्री का सम्पूर्ण शरीर फिर पहले के समान ही संकुचित हो उठा–एक हल्की कम्पन लिये हुए शब्दों ने मुझे चौंका सा दिया। ससुराल वाले रुष्ट हैं–वे उसे घर ले जाने को राजी नहीं और पति को अकेले जाना स्वीकार नहीं। विवाह के उपरान्त मां से उसका कोई सम्बन्ध नहीं रहा। उससे रुपया लेने से मृत्यु अच्छी है।

इतनी टीका के उपरान्त मैंने मूलतत्व का सूत्र पकड़ पाया। वह पतित कही जाने वाली मां की पुत्री है और बिना समाज के प्रवेश-पत्र के ही साध्वी स्त्रियों के मन्दिर में प्रवेश करना चाहती है। उसे पता नहीं कि समाज के पास वह जादू की छड़ी है जिससे छूकर वह जिस स्त्री को सती कह देता है, केवल वही सती होने का सौभाग्य प्राप्त कर सकती है। जिसे समाज ने एक बार कुलवधुओं की पंक्ति से बाहर खड़ा कर दिया, उसे जन्मजन्मान्तर तक अपनी सभी भावी पीढ़ियों के साथ बाहर खड़े रहने को ही जीवन का सब से बड़ा वरदान समझना चाहिये।

पत्नीत्व की चोरी करने वाली वह अबोध स्त्री अवश्य ही समाज के जटिल नीतिशास्त्र को समझने में असमर्थ रही तभी तो उसकी जिज्ञासा भरी दृष्टि मेरे मुख पर स्थिर हो कर, मानो बड़े करुण-भाव से बार-बार पूछने लगी, 'क्या मैं पवित्र नहीं हूँ?' एक ओर यह स्त्री है जिस की माता को माता बनने का अधिकार ही नहीं दिया गया था, और दूसरी ओर मैं हूँ जिसकी माता, नानी, परनानी, दादी, परदादी, और उनकी भी पूर्वजाएं अपने पतियों का चरणोदक ले लेकर और उन में से कई जीवित ही अग्नि पथ पार करके अपने लिए ही नहीं, मेरे लिये भी पतिव्रता का प्रमाणपत्र प्राप्त कर चुकी हैं। मैं अनेकों से पूजनीया मां और आदरणीया बहिन का सम्बोधन पाती रहती हूँ, किन्तु इसे कौन अभागा मां बहिन कह कर अपवित्र बनेगा?

और वह जानना चाहती है, अपने अपवित्र माने जाने का कारण ! यह अपने विद्रोही पति के साथ सती ही क्यों न हो जावे, परन्तु इसके रक्त के अणु-अणु में व्याप्त मलिन संस्कार कैसे धुल सकेगा ?

उसे घर भेजने का प्रबन्ध कर मैं जब फाटक से लौटी तब धरती और मेरे पैर लोहा-चुम्बक बन रहे थे। उस रात कितनी देर तक मैं इसी समस्या में उलझी रही, यह याद नहीं आता, पर कोई समाधान न निकल सका। अपने पति की प्रतिष्ठा के लिए और अपने आत्म-सम्मान के लिए भी वह दान नहीं स्वीकार करेगी......... और काम देने की बात का स्मरण कर मेरे ओठों में एक व्यंग की हंसी आये बिना न रह सकी। वह क्या जाने कि उसकी उपस्थिति क्या क्या अनर्थ कर सकती है।

फिर दो दिन प्रयत्न करने पर भी जब उसका प्रबन्ध न हो सका तब मैंने क्या किया, इसकी कथा मनो-विज्ञान सम्बन्धी मेरे अज्ञान को प्रकट करती है। कभी कोई ऐसा लेख नकल करने के लिये दे दिया जिस के पृष्ठों का कोई उपयोग ही शेष न रहा था। कभी कोई ऐसा पत्र लिखवा दिया जिस से रद्दी कागजों की टोकरी का ही गौरव बढ़ता था। पर जब उसकी दृष्टि संकोच के भार से और अधिक नत हो गई, कण्ठ और अधिक कुण्ठित जान पड़ने लगा तब मैंने समझा कि उसने इस काम के अभिनय के भीतर तक देख लिया है। मुझे उसके काम की आवश्यकता नहीं, यह जब उसका रोम-रोम जानने लगा तब इस अभिनय को और चलाने का मेरा साहस भी समाप्त हो आया।

फिर कुछ दिनों तक उसका समाचार ही नहीं मिल सका। कदाचित पति का रोग अधिक भयंकर हो उठा था। इस बीच में केवल एक बार उसने सहायता की याचना की जिस से मैंने समझ लिया कि मेरी सहानुभूति को सत्य रूप में ही उसने स्वीकार किया है।

दिन के सप्ताह और सप्ताह के महीने बन जाने पर एक दिन उसकी किसी परिचित स्त्री से मुझे इस करुण कथा का जो उपसंहार ज्ञात हुआ वह तो सुना सुनाया ही कहा जायगा, पर उस ने मेरे मर्म को जितना स्पर्श किया उतना कोई और घटना नहीं कर सकी।

उस अभागी स्त्री की इतनी एकान्त साधना भी उसके पति को न बचा सकी। अन्तिम क्षणों में पुत्र का मुख देखने जो पिता आए थे, उन्होंने, अनाहार से दुर्बल, अनेक रातों से जागी हुई, बधू की ओर भूल कर भी दृष्टिपात नहीं किया। कदाचित् उसके मन में भी यही धारणा रही हो कि उसी अनाचारिणी के कारण उनके पुत्र को जीवन से हाथ धोना पड़ा है।

पड़ोसियों में से जब किसी ने आकर उसकी बेहोशी दूर की तब सब उसके मृत पति को ले जा चुके थे। रात भर वह उसी प्रकार बैठी रही परन्तु सवेरे ससुर को जाने के लिए सामान ठीक करते उसकी चेतना लौटी। अंचल से आंखें पोंछ कर जब उसने किवाड़ की ओट से प्रश्न किया, "कै बजे चलना है ?" तो मानो ससुर देवता पर गाज गिरी। प्रथम आघात सह कर जब उनमें बोलने की शक्ति लौटी तब उन्होंने भी क्रूरतम प्रहार किया। कहा, "जो लेकर अपने घर से निकली थी वही लेकर भलमनसाहत से अपनी मां के पास लौट जाओ, नहीं तो तुम्हारे साथ हमें बुरी तरह से पेश आना पड़ेगा। हमारे कुल में दाग लगाकर भी क्या तुम्हें सन्तोष नहीं हुआ ?"

स्त्री ने क्रोध नहीं किया, मान-अपमान का विचार नहीं किया। जिस घर पर उसका न्यायोचित अधिकार था उसी में पग भर भूमि की भीख मांगने के लिए अन्चल फैला कर दीनता से कहा "घर में कई नौकर-चाकर हैं। मेरे लिए दो मुट्ठी आटा भारी न होगा। मैं भी आप सब की सेवा करती हुई पड़ी रहूंगी।"

किन्तु ससुर का उत्तर लज्जा को भी लज्जित कर देने वाला था। मुझ

तक यह समाचार बहुत विलम्ब से पहुँच सका। खोज करने पर किसी ने बताया, वह विधवा-आश्रम चली गई है, किसी ने कहा, वह मां के पास लौट गई है।

धीरे-धीरे समय जब उसकी स्मृति को फीका कर चुका था, तब अचानक एक मैले कुचैले लिफाफे ने फिर सब कुछ सजीव कर दिया। वह अच्छी है, मुझे नहीं भूली है, पर और कष्ट नहीं देना चाहती। सिलाई बुनाई आदि के द्वारा उसे कुछ मिल ही जाता है! जब नहीं मिलेगा तब मुझ से मांगने में उसे संकोच न होगा।

और भी पूछा है, ऐसी स्त्रियों को जीविका के साधन सिखाने के लिए जो आश्रम मैं खोलना चाहती थी उसे कब खोलूँगी?

और मैं अपने मन से प्रश्न कर रही हूँ, "क्या तुझे आज भी आभिजात्य का गर्व है? क्या तुझे आज भी समाज द्वारा मिले भलाई-बुराई के प्रमाणपत्रों पर विश्वास है?"

—श्री महादेवी वर्मा एम० ए०

['अतीत के चलचित्र' से]

(२०)

मित्रता

जब कोई युवा पुरुष अपने घर से बाहर निकल कर बाहरी संसार में अपनी स्थिति जमाता है, तब पहली कठिनता उसे मित्र चुनने में पड़ती है। यदि उसकी स्थिति बिलकुल एकांत और निराली नहीं रहती तो उसकी जान-पहचान के लोग धड़ाधड़ बढ़ते जाते हैं और थोड़े ही दिनों में कुछ लोगों से उसका हेल-मेल हो जाता है। यही हेल-मेल बढ़ते-बढ़ते मित्रता के रूप में परिणित हो जाता है। मित्रों के चुनाव की उपयुक्तता पर उसके जीवन की सफलता निर्भर हो जाती है, क्योंकि संगत का गुप्त प्रभाव हमारे आचरण पर बड़ा भारी पड़ता है।

हम लोग ऐसे समय समाज में प्रवेश करके अपना कार्य आरम्भ करते हैं, जबकि हमारा चित्त कोमल और हर तरह का संस्कार ग्रहण करने योग्य रहता है। हमारे भाव अपरिमार्जित और हमारी प्रवृत्ति अपरिपक्व रहती है, अपने मनोवेगों की शक्ति और अपनी प्रकृति की कोमलता का पता हमीं को नहीं रहता। हम लोग कच्ची मिट्टी की मूर्ति के समान रहते हैं जिसे जो जिस रूप का चाहे, उस रूप का करे—चाहे राक्षस बनावे चाहे देवता। ऐसे लोगों का साथ करना हमारे लिए बुरा है जो हमसे अधिक दृढ़ संकल्प के

हैं, क्योंकि हमें उनकी हर एक बात बिना विरोध के मान लेनी पड़ती है। पर ऐसे लोगों का साथ करना और भी बुरा है जो हमारी ही बात को ऊपर रखते हैं; क्योंकि ऐसी दशा में न तो हमारे ऊपर कोई दाब रहती है और न हमारे लिए कोई सहारा रहता है। दोनों अवस्थाओं में जिस बात का भय रहता है, उसका पता युवा पुरुषों को प्राय: बहुत कम रहता है। यदि विवेक से काम लिया जाए तो यह भय नहीं रहता, पर युवा पुरुष प्राय: विवेक से कम काम लेते हैं। कैसे आश्चर्य की बात है कि लोग एक घोड़ा लेते हैं तो उसके गुण-दोष को कितना परख कर लेते हैं, पर किसी को मित्र बनाने में उसके पूर्व आचरण और प्रकृति आदि का कुछ भी विचार और अनुसंधान नहीं करते। वे उसमें सब बातें अच्छी ही अच्छी मान कर उस पर अपना पूरा विश्वास जमा देते हैं। हंसमुख चेहरा, बातचीत का ढंग, थोड़ी चतुराई व साहस—ये ही दो चार बातें किसी में देख कर लोग चटपट उसे अपना बना लेते हैं। हम लोग यह नहीं सोचते कि मैत्री का उद्देश्य क्या है तथा जीवन के व्यवहार में उसका कुछ मूल्य भी है। यह बात हमें नहीं सूझती कि यह एक ऐसा साधन है जिससे आत्मशिक्षा का कार्य बहुत सुगम हो जाता है। एक प्राचीन विद्वान् का वचन है—"विश्वासपात्र मित्र से बड़ी भारी रक्षा रहती है। जिसे ऐसा मित्र मिल जाय, उसे समझना चाहिए कि खजाना मिल गया।" विश्वासपात्र मित्र जीवन की एक औषधि है। हमें अपने मित्र से यह आशा रखनी चाहिए कि वह उत्तम संकल्पों में हमें दृढ़ करेंगे, दोषों और त्रुटियों से हमें बचावेंगे, हमारे सत्य, पवित्रता और मर्यादा के प्रेम को पुष्ट करेंगे, जब हम कुमार्ग पर पैर रखेंगे, तब वे हमें सचेत करेंगे, जब हम हतोत्साह होंगे तब हमें उत्साहित करेंगे। सारांश यह कि वे हमें उत्तमतापूर्वक जीवन-निर्वाह करने में हर तरह से सहायता देंगे। सच्ची मित्रता में उत्तम से उत्तम वैद्य की

सी निपुणता और परख होती है। अच्छी से अच्छी माता का-सा धैर्य और कोमलता होती है। ऐसी ही मित्रता करने का प्रयत्न प्रत्येक युवा पुरुष को करना चाहिए।

छात्रावस्था में तो मित्रता की धुन सवार रहती है। मित्रता हृदय से उमड़ी पड़ती है। पीछे जो स्नेह बन्धन होते हैं, उनमें न तो उतनी उमंग रहती है, न खिन्नता। बाल मैत्री में जो मग्न करने वाला आनन्द होता है, जो हृदय को बेधने वाली ईर्ष्या और खिन्नता होती है, वह और कहां? कैसी मधुरता और कैसी अनुरक्ति होती है? कैसा अपार विश्वास होता है? हृदय के कैसे कैसे उद्‌गार निकलते हैं! वर्तमान कैसा आनन्दमय दिखाई पड़ता है और भविष्य के सम्बन्ध में कैसी लुभाने वाली कल्पनायें मन में रहती हैं! कैसा बिगाड़ होता है और कैसी आर्द्रता के साथ मेल होता है? कैसी क्षोभ से भरी बातें होती हैं और कैसी आवेगपूर्ण लिखा-पढ़ी होती है। कितनी जल्दी बातें लगती हैं, और कितनी जल्दी मानना-मनाना होता है। 'सहपाठी की मित्रता' इस उक्ति में हृदय के कितने भारी उथल-पुथल का भाव भरा हुआ है। किन्तु जिस प्रकार युवापुरुष की मित्रता स्कूल के बालक की मित्रता से दृढ़, शांत और गम्भीर होती है, उसी प्रकार हमारी युवा वस्था के मित्र बाल्यावस्था के मित्रों से कई बातों में भिन्न होते हैं। मैं समझता हूँ कि मित्र चाहते हुए बहुत से लोग मित्र के आदर्श की कल्पना मन में करते होंगे, पर इस कल्पित आदर्श से तो हमारा काम जीवन की झंझटों में चलता नहीं। सुन्दर प्रतिभा, मन भावनी चाल और स्वच्छन्द प्रकृति ये ही दो चार बातें देख कर मित्रता की जाती है; पर जीवन संग्राम में साथ देने वाले मित्रों में इससे कुछ अधिक बातें चाहियें। मित्र केवल उसे नहीं कहते जिसके गुणों की तो हम प्रशंसा करें, पर जिस से हम स्नेह न कर सकें; जिस से अपने छोटे मोटे काम तो हम निकालते जायें, पर

भीतर घृणा करते रहें। मित्र सच्चे पथप्रदर्शक के समान होना चाहिये, जिस पर हम पूरा विश्वास कर सकें, भाई के समान होना चाहिये, जिसे हम अपना प्रीतिपात्र बना सकें। हमारे और हमारे मित्र के बीच सच्ची सहानुभूति होनी चाहिये। ऐसी सहानुभूति जिससे दोनों मित्र एक दूसरे की बराबर खोज खबर लिया करें, ऐसी सहानुभूति जिससे एक के हानि लाभ को दूसरा अपना हानि लाभ समझे।

मित्रता के लिए यह आवश्यक नहीं है कि दो मित्र एक ही प्रकार का कार्य करते हों या एक ही रुचि के हों। इसी प्रकार प्रकृति और आचरण की समानता भी आवश्यक व वांछनीय नहीं है। दो भिन्न प्रकृति के मनुष्यों में बराबर प्रीति और मित्रता रही है। राम धीर और शांति प्रकृति के थे, लक्ष्मण उग्र और उद्धत स्वभाव के थे। पर दोनों भाइयों में अत्यन्त प्रगाढ़ स्नेह था। उदार तथा उच्चाशय कर्ण और लोभी दुर्योधन के स्वभावों में कुछ विशेष समानता न थी, पर उन दोनों की मित्रता खूब निभी। यही कोई बात नहीं है कि एक स्वभाव और रुचि के लोगों ही में मित्रता हो सकती है। समाज में विभिन्नता देख कर हम लोग एक दूसरे की ओर आकर्षित होते हैं। जो गुण हम में नहीं हैं, हम चाहते हैं कि कोई ऐसा मित्र मिले जिसमें वह गुण हो। चिन्ताशील मनुष्य प्रफुल्लित चित्त मनुष्य का साथ ढूंढता है; निर्बल बली का, धीर उत्साही का। उच्च आकांक्षा वाला चन्द्रगुप्त युक्ति और उपाय के लिये चाणक्य का मुंह ताकता था। नीतिविशारद अकबर मन बहलाने के लिए बीरबल की ओर देखता था।

मित्र का कर्त्तव्य इस प्रकार बतलाया गया है—"उच्च और महाकार्यों में इस प्रकार सहायता देना, मन बढ़ाना और साहस दिलाना कि तुम अपनी निज सामर्थ्य से बाहर काम कर जाओ।" यह कर्त्तव्य उसीसे पूरा होगा जो दृढ़ चित्त और सत्य संकल्प का हो। इससे

हमें ऐसे ही मित्रों की खोज में रहना चाहिए जिन में हम से अधिक आत्मबल हो। हमें उनका पल्ला उस तरह पकड़ना चाहिये जिस तरह सुग्रीव ने राम का पल्ला पकड़ा था। मित्र हों तो प्रतिष्ठित और शुद्ध हृदय के हों, मृदुल और पुरुषार्थी हों, शिष्ट और सत्यनिष्ठ हों, जिस से हम अपने को उन के भरोसे छोड़ सकें और यह विश्वास कर सकें कि उन से किसी प्रकार का धोखा न होगा। मित्रता एक नई शक्ति की योजना है। बर्क ने कहा है कि आचरण-दृष्टान्त ही मनुष्य जाति की पाठशाला है। जो कुछ वह उस से सीख सकता है, वह और किसी से नहीं।

संसार के अनेक महान् पुरुष मित्रों की बदौलत बड़े बड़े कार्य करने में समर्थ हुए हैं। मित्रों ने उनके हृदय के उच्च भावों को सहारा दिया है। मित्रों ही के दृष्टान्तों को देख कर उन्होंने हृदय को दृढ़ किया है। अहा! मित्रों ने कितने मनुष्यों के जीवन को साधु और श्रेष्ठ बनाया है। उन्हें मूर्खता और कुमार्ग के गड्ढे से निकाल कर सात्विकता के पवित्र शिखर पर पहुँचाया है। मित्र उन्हें सुन्दर मन्त्रणा और सहारा देने के लिए सदा उद्यत रहते हैं, जिनके सुख और सौभाग्य की चिन्ता वे निरंतर करते रहते हैं। ऐसे भी मित्र होते हैं जो विवेक को जागरित करना और कर्त्तव्य बुद्धि को उत्तेजित करना जानते हैं। ऐसे भी मित्र होते हैं जो टूटे जी को जोड़ना और लड़खड़ाते पांव को ठहराना जानते हैं। बहुतेरे मित्र हैं जो ऐसे दृढ़ आशय और उद्देश्य की स्थापना करते हैं जिनसे कर्मक्षेत्र में आप भी श्रेष्ठ बनते हैं, और दूसरों को भी श्रेष्ठ बनाते हैं। मित्रता जीवन और मरण के मार्ग में सहारे के लिए है। यह सैर सपाटे और अच्छे दिनों के लिए भी है और संकट और विपत्ति के बुरे दिनों के लिए भी है। यह हंसी दिल्लगी के गुलछर्रों में भी सहायता देती है और धर्म के मार्ग में भी मित्रों को एक दूसरे के जीवन के कर्त्तव्यों को उन्नत करके उन्हें साहस

बुद्धि और एकता द्वारा चमकाना चाहिये। हमें अपने मित्र से कहना चाहिये—'मित्र अपना हाथ बढ़ाओ। यह जीवन और मरण में हमारा सहारा होगा। तुम्हारे द्वारा मेरी भलाई होगी। पर यह नहीं कि सारा ऋण मेरे ही ऊपर रहे, तुम्हारा भी उपकार होगा, जो कुछ तुम करोगे उस से तुम्हारा भी भला होगा। सत्यशील, न्याय और पराक्रमी बने रहो, क्योंकि यदि तुम चूकोगे तो मै भी चूकूंगा। जहां जहां तुम जाओगे, मैं भी जाऊंगा। तुम्हारी बढ़ती होगी तो मेरी भी बढ़ती होगी। जीवन के संग्राम में वीरता के साथ लड़ो, क्योंकि तुम्हारी ढाल मैं लिये हूं।

दुनिया तो जैसी हमारी संगत होगी वैसा हमें समझेगी ही। पर हमें अपने कामों में भी संगत के अनुसार सहायता व बाधा पहुँचेगी। उसका चित्त अत्यन्त दृढ़ समझना चाहिये जिसकी चित्त वृत्ति पर उन लोगों का कुछ भी प्रभाव न पड़े जिनका बराबर साथ रहता है। पर अच्छी तरह समझ रक्खो कि यह कभी हो नहीं सकता। चाहे तुम्हें ज्ञान न पड़े पर उनका प्रभाव तुम पर बराबर हर घड़ी पड़ता रहेगा और उसी के अनुसार तुम उन्नत व अवनत होगे, उत्साहित और हतोत्साह होगे।

कुसंग का ज्वर सबसे भयानक होता है। यह केवल नीति और सद्वृत्ति का ही नाश नहीं करता, बल्कि बुद्धि का भी क्षय करता है। एक बार जब मनुष्य अपना पैर कीचड़ में डाल देता है, तब फिर यह नहीं देखता कि वह कहां और कैसी जगह पैर रखता है। धीरे धीरे उन बुरी बातों से अभ्यस्त होते होते तुम्हारी घृणा कम हो जायेगी। पीछे तुम्हें उनसे चिढ़ न मालूम होगी। तुम्हारा विवेक कुंठित हो जायगा और तुम्हें भले-बुरे की पहचान न रह जायगी। अन्त में होते होते तुम भी बुराई के भक्त बन जाओगे। अतः

हृदय को उज्ज्वल और निष्कलंक रखने का सबसे अच्छा उपाय यही है कि बुरी संगत की छूत से बचो। पुरानी कहावत है कि—

काजल की कोठरी में कैसो हू सयानो जाय,
एक लीक काजर की लागि है पै लागि है ॥

—श्री रामचन्द्र शुक्ल

(२१)

मैथिलीशरण गुप्त—एक रेखाचित्र

शायद तीसरी क्लास में पढ़ता था, तब मैथलीशरण गुप्त नाम मैंने सुना। जाने कितने कानों में हो कर वह मुझ तक पहुँचा होगा। प्रसिद्धि ऐसे ही कानों-कान फैलती है। सोचता हूँ कि तब मैं क्या जानने योग्य रहा हूँगा। अक्षर पढ़ना भर जानता हूँगा। पर जिस शाला में मैं था, उसके छोटे बड़े, जान-अनजान, सब बालकों के सिर उन दिनों मैथलीशरणजी और उनके पद्य ऐसे चढ़ गये थे कि हर एक यह दिखलाना चाहता था कि उसको अधिक पद्य याद हैं। मेरे कण्ठ भी तब कई पद्य बैठ गये थे। मतलब तो उनका पूरा हम क्या समझते होंगे, फिर भी धरोहर की भाँति सेंत कर उन पद्यों को हम अपनी स्मृति में रखे रहना चाहते थे। और ढिठाई देखिये, अनुकरण में वैसी कुछ पद्य-रचना भी खुद किया करते थे।

दिन बीतने के साथ यह नाम कुछ बड़ा ही होता गया। मन के भीतर वह ज्यादा जगह घेरता गया। जैसे उस नामधारी व्यक्ति को जबरदस्त आकार-प्रकार का भी होना चाहिए, नहीं तो हम नहीं मानेंगे। छटी क्लास में था कि सातवीं में, उन के 'जयद्रथ-वध' के खण्ड पाठ्य के तौर पर पढ़े। तब ऐसा लगता था कि मैथिलीशरण गुप्त जाने क्या-क्या होंगे। बस पुराण पुरुषोत्तम ही होंगे और चिरगांव कोई अनुपम गाँव होगा।

कौन जानता था कि करिश्मा होने में आयगा। लेकिन सन्' १४ के बाद सन' ३१ भी आया और करिश्मा सचमुच होने में आगया। लेकिन जो हुआ वह करिश्मा-सा बिल्कुल नहीं मालूम हुआ। अरे, मैंने देखा कि यह तो सारी बात एकदम मामूली बात की तरह हो गई! मैथिलीशरण एकदम मामूली आदमी हैं, चिरगांव, बिल्कुल मामूली गांव है। सब सर्वसाधारण है। और मैं सोचता हूं कि वाह!

कहना चाहिए कि चिरगांव में यों ही जा धमका। मानिये कि 'मान न मान मेहमान' बनने की ही बात हुई। वह कौन मुझे जानते थे? बस, भाई सियारामशरण का शायद एक पत्र उससे पहले मैंने पाया था। या कृष्णानन्द गुप्त से, जो चिरगांव में रहते थे, कुछ चिट्ठीपत्री हो गई थी। उतना सहारा थामकर पूछता-पाछता मैं गुप्त लोगों के बड़े से अहाते में जा मौजूद हुआ। वहां खड़े रह कर क्षणभर सोचता रह गया कि अब क्या कह कर क्या करूं? पास नीम के पेड़ में पड़े हुए झूले में छोटी पिटरी रखे एक अधेड़ वय के महाशय, कृशकाय नीमास्तीन मैली-सी बंडी पहने धीमे-धीमे झूल रहे थे। वह बंडी खद्दर क्या, टाट की थी और सच कहूं तो बहुत सफेद नहीं थी। और धोती ऐसी कि मानो कृपापूर्वक उसे घुटने से जरा नीचे तक आजाने की इजाजत मिली हो। धोती वह बस यथावश्यक ही थी और अपने नाम से अधिक काम नहीं करती थी। कपड़े का टुकड़ा ही उसे कहिये।

मैं अपनी बगल में छोटासा पुलिन्दा दाबे उस बड़े अहाते के बीच खड़ा हुआ कुछ भूल सा गया कि अपने साथ क्या करूं। क्या कहूं और क्या पूछूं? झूले वाले तो मन ही मन कुछ गुनगुना रहे हैं और बाहर का उन्हें विशेष ध्यान नहीं है।

पर मिनट भर में किसी ने मुझे सम्बोधन किया। मैंने सियाराम को पूछा, अपना नाम बताया। जिस पर झट सियाराम मौजूद।

कृष्णानन्द भी उपस्थित । और देखते–देखते मैं ऐसा आत्मीयता में घिर गया कि क्या कहूँ । कूले वाले निकले खुद मैथिलीशरण गुप्त । और क्षण भर में वहां मेरे चारों ओर ऐसा घर बन गया कि अपने घर से ज्यादे । उस समय जैसे मुझे थोड़ी देर के लिए भी इन लोगों के प्रति अपने को अजनबी समझने के अपराध पर कुण्ठा होने लगी । सचमुच मुझे बहुत शर्म मालूम हुई । न कुछ में मेरा पुलिंदा छिन गया । जैसे मेरी गांठ खो गई ।

और मैंने सोचा कि राम-राम, मैथिलीशरण यह ! यह मैथलीशरण !!

(२)

फिर क्या एक रोज में छुट्टी मिलने वाली थी ? कई रोज वहां रहना हुआ । चिरगांव के उस घर की खातिर बस आफत है । अतिथि की खैर नहीं । स्नेह भी एक मिकदार में ही आदमी झेल सकता है ।

उसके बाद कई बार चिरगांव जाने का मौका हुआ है । हरबार मैंने यह अनुभव किया है कि उस घर में जाकर किसी बाहर वाले में अपना परायापन या अपना अपनापन कायम नहीं रह सकता । वहां वैसी सुधबुध बिसर जाती है । वातावरण में इतना स्नेह है कि जितना नहीं होना चाहिए । बीसवीं सदी के शहरों में रहने वाला आदमी ऐसे स्नेह पाने का आदी नहीं होता । उसे अविश्वास से काफी काम पड़ता है, और दम्भ से भी काम पड़ता है । इससे खुले स्नेह में वह कुछ खोया-सा हो सकता है ।

चिरगांव का वह गुप्त लोगों का घर बहुतसी बातों में आधुनिक नहीं है । पुरातन है, या कहो सनातन है । वह घर, यानी मैथिलीशरण एक ही बात है । घर और वह एक हैं । दोनों में प्रकृति की एकता है ।

चिरगांव बीसवीं सदी से अछूता है, सो नहीं । बल्कि इसी

अहाते में एक ओर एक खासा बड़ा छापाखाना है। वहां अंजन चलता रहता है और मशीन की खटपट खूब गूंजती है। तरह तरह के कल-पुरजे इधर उधर आपको दिखाई देंगे। नये टट्टी घर में फ्लश-सिस्टम है। इस तरह उस परिवार को चौदहवीं सदी की कोई यादगार या खण्ड नहीं कह सकते। पर निस्सन्देह गुप्त-घराने के अन्तरंग में ठेठ भारतीयता से हट कर दूसरी वस्तु अभी तक प्रवेश नहीं पा सकी है। परम्परा सनातन है और उस परम्परा को वहां अक्षुण्ण रखा है।

गुप्त-परिवार का पारिवारिक संगठन नये नमूने का नहीं है। वह पुरातन शैली का है। पर इस कारण शिथिल नहीं, बल्कि सक्षम है। इतना सक्षम है कि आधुनिकता को वह झेल ही नहीं रहा है, बल्कि समीचीन भाव में उसे गति भी दे रहा है। [मैथिलीशरण और सोयाराम शरण की कविता को हम पुरानी कह कर साहित्य से नहीं टाल सकेंगे। असहमति जुदा बात है। पर जाग उनमें भरपूर है। आंखें उनमें मूंद कर नहीं रखी गई हैं।] परिवार वह सम्मिलित ही नहीं, एक है। उसकी जीवन शक्ति अविभक्त है। और मैथिलीशरण मानो उसके प्राण-केन्द्र हैं।

स्वर्गीय प्रेमचन्द के साथ की एक बात मुझे याद आती है। मैंने पूछा कि मैथिलीशरण जी से तो आपकी खुली घनिष्ठता है न !

बोले कि सो तो नहीं। हां कुछ दिन लखनऊ में साथ रहना हुआ था। लेकिन यही राह-रास्ते की दुआ सलाम है। आगे कुछ नहीं।

मैंने कहा यह तो हिन्दी का सौभाग्य नहीं है। नहीं, नहीं, आप दोनों को निकट आना होगा। निकट लाया जायेगा। बोलिये, कभी चिरगांव चलेंगे ?

खैर, उसी बात के सिलसिले में प्रेमचन्द जी ने कहा कि जैनेन्द्र, मुझे एक बड़ा अचरज है । मैथलीशरण और सियारामशरण दोनों

भाइयों को देखकर मैं हैरत में रह जाता हूँ। लक्ष्मण भी क्या रामचन्द्र जी के प्रति ऐसे होंगे ? जैनेन्द्र, दो भाई ऐसे अभिन्न अभिन्न कैसे हो सकते हैं ? मेरी तो समझ में नहीं आता। कहीं मैंने उन में भेद नहीं देखा। या तो दोनों में से किसी एक में कमी है, दम नहीं है, जान नहीं है।

मैंने कहा कि दो सगे भाई झगड़ें, क्या यह आप स्वाभाविक मानेंगे ?

बोले कि और नहीं तो क्या ! दस्तूर तो यही है ! भाई सगे तो छुटपन के होते हैं। बड़े होकर वे आपस में भाई-भाई तक भी क्यों रहें ? लड़ने से उन्हें कौन रोकता है ? मैं तो देखता हूँ कि सगे भाई अधिकतर दुश्मन बन कर ही रहते हैं। स्पर्द्धा से बच नहीं सकते। मैंने कहा कि दुनिया को तो मैं क्या जानूं, लेकिन सियाराम और मैथलीशरण में क्या, बल्कि सभी भाइयोंमें सचमुच जरा भी भेद नहीं है। मैं तो चिरगाँव कई बार हो आया हूँ।

प्रेमचन्द बोले कि यही तो। प्रेमचन्द जी इस अपने विस्मय को कभी नहीं जीत सके। वह मानो उनके भीतर हल ही नहीं होता था। पर उधर जब यह बात मैंने गुप्त-भाइयों को सुनाई तो उन्हें प्रेमचन्द जी के विस्मय पर बड़ा विस्मय हुआ ! दो भाइयों के बीच कुछ अन्यथा सम्बन्ध सम्भव भी हो सकता है, मानो यही उनके लिये अकल्पनीय था।

तो यह अन्तर है। शहरी के लिये अविश्वास स्वाभाविक है और परिवार का विभक्त होते जाना स्वाभाविक है। यहां तक कि पति-पत्नी में भी पृथक् अधिकार की भावना हो आये।

पर यह शहरियत विशेषता से मैथलीशरण जी के प्रयत्न से उनके परिवार को नहीं छू सकी है। मैथलीशरण जी में इस की छूत नहीं है।

इससे यह अपने व्यवहार में हार्दिक हैं । ऊपरी लिहाज में चूक सकते हैं। अदब के नियमों में भूल कर सकते हैं, पर अपनी भूल में भी वह हार्दिक हैं और प्रेम को नहीं भूल सकते । हृदय को पीछे रोक कर चलना उन्हें कम आता है।

(३)

'नाम बड़े, दर्शन थोड़े' उनकी पहली छाप मुझ पर यह पड़ी। शुरू में चाहे यह अनुभव मुझे कैसा भी लगा हो, पर पीछे ज्यों-ज्यों मैं जानता गया हूं, मालूम हुआ कि दर्शन को थोड़ा रख कर ही उन्हों ने अपना नाम बड़ा कर पाया है। अपने चारों ओर उन्होंने दर्शनीयता नहीं बटोरी। बल्कि कहो कि वह उससे उल्टे चले हैं। रूप उन्होंने आकर्षक नहीं पाया। इतने से ही मानो मैथलीशरण सन्तुष्ट नहीं हैं। अपनी ओर से भी वह किसी तरह उसे आकर्षक न बनने दें, मानो इसका भी उन्हें ध्यान रहता है। लिबास मोटा, देहाती और कुढंगा। सज्जा यदि हो तो तदनुकूल और आधुनिक फैसी के प्रतिकूल। सिर पर बुन्देलखण्डी पगड़ी, घुटने तक गया कुरता और लगभग घुटने तक ही रहने वाली धोती। बाल इतने छोटे कि उन्हें चाह कर भी संवारा न जा सके। शरीर कृश और श्यामल। मूंछें बेरोक उगती हुई, जिनमें कोई काट-छांट नहीं, मानो देखने वाले अपने समूचेपन से मैथलीशरण घोषित करना चाहते हों कि मैं किसी सम्भ्रम के योग्य प्राणी नहीं हूं। उत्सुकता का, या शोभा का, या समादर का पात्र कोई और होगा। मैं साधारण में साधारण हूं। देखो न, मैं ऐसा तो हूं कि जिसे जरा ऊपरी ढंग भी नहीं आता।

फिर भी सच यह है कि उन के ढंग में भी अपनी एक आन है। एक निजत्व है। और इधर की उनकी बड़ी मूंछों के साथ वाली छोटी दाढ़ी के फोटोग्राफ देखता हूं तो रौब पड़े बिना मुझ पर

नहीं रहता। कबूल करना चाहिये कि आमने सामने होकर वह रौब मुझे अनुभव नहीं होता क्योंकि वह मिलते ही ऐसे खुले अपनावे के साथ हैं कि रौब बिचारा क्या करे?

खैर, मालूम होता है कि अपने बारे में वह न गलतफहमी खुद चाहते हैं, न औरों में चाहते हैं। जो हैं सो हैं, न अधिक मानते हैं, न अधिक दीखते हैं, और जो हैं उससे कम कोई मानना चाहे तो उसे भी छुट्टी है। लेकिन सच यह है कि कम माना जाना भी उन्हें पसंद नहीं है। इज्जत में व्यतिरेक नहीं आ सकता। कुल के और अन्य प्रकार के गौरव की टेक उन में है। उस मामले में वह दुर्बल भी हैं, हठीले भी हैं।

(४)

गाम्भीर्य? नहीं भाई वह मैंने नहीं पाया। और अपनी जानें, मैं तो अपनी कहूँ। गम्भीरता की मैंने कमी पाई। कमी भी सोच-समझ कर कह रहा हूँ। किसी के बुरा मानने का डर न हो तो शायद कहूँ कि अभाव पाया। और कुछ मैथिलीशरण आवश्यकता से अधिक हों, गम्भीर आशा से कम हैं। शायद आवश्यकता से भी कम हैं। मैं अनुमान कुछ करता था, निकला कुछ, विद्वान को गम्भीर होना चाहिये। पर मैथिलीशरण जी के ऊपर विद्वत्ता ढंग के साथ टिकती मैंने नहीं देखी। बीच में चपलता झांक ही उठती है। कभी तो डर होता है कि क्या वह सचमुच पचास से ऊपर के हैं भी? मालूम होता है कि जो भी हों, पर अब भी बचपन है। जिससे बुढ़ापे की आशा हो, उसकी जवानी हमें बचपन न लगेगी, तो क्या लगेगी? धीमे नहीं चलते, तेज चलते हैं। कहीं पचास से ऊपर उमर वालों का भाग-दौड़ के खेलों का भारतीय टूरनामेंट हो जाय, तो मैथिलीशरण का नम्बर शर्तिया पिछड़ा नहीं रह सकता। जहां मैं

सोचता रह गया हूँ, वे कर गुजरे हैं। सड़क पर हम कई जन जा रहे हैं, एक बच्चा किसी की चपेट में आकर रास्ते की धूल में गिर पड़ा, तो आप में से पहले वह होंगे जो उसे उठायेंगे। सूझ-बूझ उन में जगी रहती है। परिस्थिति से वे दबते नहीं हैं। मानो परिस्थिति के प्रति दबंग रहते हैं। आधुनिक सूट बूट वाले समाज में भी अगर उनका पहुँचना हो जाय, तो अदने देहाती बाने को लेकर वहां भी वह मन्द नहीं दीखेंगे। टी-पार्टी होगी तो न चाय पीयेंगे, न शायद कुछ खायेंगे। कदाचित् फल भी न छूयेंगे। पर उस पार्टी में अपने परहेज़ के कारण असमंजस में किसी को न पड़ने देंगे। मिलेंगे, बोलेंगे, हंसेंगे और अपनी चाल-ढाल की असाधारणता पर या कि परहेज पर मानो किसी का भी ध्यान तनिक न रुकने देंगे। गलती वह बड़े सहज भाव से कर सकते हैं, पर कुंठित व्यग्रता या असमंजस द्वारा अपनी गलती को डबल गलती बनाने की गलती वह कभी नहीं करते।

पर अदब-कायदे के प्रति अवज्ञा उन में नहीं है। अवज्ञा किसी के प्रति नहीं है। इस बारे में वह कमजोर तक हैं। पुरानी परिपाटी का अदब-कायदा उनसे नहीं छूट सकता। वह हर एक से शालीनता की आशा रखते हैं। छोटा, छोटा है, बड़ा बड़ा है। सबको अपना पद देकर चलना चाहिए। राजा को 'हुजूर' कहेंगे। रंक को 'तू' भी कह देंगे। लेकिन दबेंगे राजा से नहीं, दबायेंगे रंक को भी नहीं।

सामाजिक मर्यादाओं की कुछ-बन्द से इन्कार करके चलने की उन में स्पर्द्धा नहीं है। वैसी रुचि और संस्कार ही नहीं हैं। व्यवहारिक समता उनके संस्कारों के प्रतिकूल है। हरिजन के अर्थ जबर्दस्त कविता और जबर्दस्त उत्सर्ग वह कर सकते हैं, पर चौके की और बात है। और छूत-छात वह—भी और बात है।

(५)

मैथलीशरण किस कोमलवाद्य-यन्त्र के समान हैं, यह तो मैं नहीं जानता। लेकिन वह अपने आवेशों को वश में रखने वाले महात्मा नहीं हैं। आवेशों के साथ बहुत कुछ सम-स्वर होकर बज उठने वाला कवि का स्वभाव उनका है। झोंका आया कि क्रोध में उनके नथने फूल आये, आँखें लाल हो गईं और शिराएँ मानो फड़क उठीं, यह हो सकता है। पर झोंका बीता कि किस बात पर उनकी आँखें नहीं डब-डबा आयेंगी, यह आप नहीं कह सकते।

मैथिलीशरण कोमल हैं तो दूसरे को लेकर भावप्रवण हैं तो दूसरे के निमित्त। मानो स्वयं में उनके पास कुछ खर्चने को नहीं है। पुण्य श्लोक पुरुषों की गाथायें हैं, और उनका ही गान उन्हें बस है। उसके आगे अपना निज का आवेदन-निवेदन क्या ?

(६)

मशीन में मैथिलीशरण कविता से शायद कम दिलचस्पी नहीं लेते। कल-पुरजों में उनको अच्छी गति है, और रस है। आप के यहाँ कोई पुराना एंजिन हो तो मैथिलीशरण जी को याद कीजिये। वह जरूर कुछ आफ़र देंगे। अरे, इंजन ठीक होकर आज नहीं कल तो काम आयेगा। व्यवहार में व्यर्थता छूट जाय तो छूट जाय पर काम की बात उनसे नहीं छूट सकती।

अपने संबन्धों के बारे में वह सावधान हैं। हर कोई उनका दोस्त नहीं बन सकता। पर दोस्त बनकर कुछ और नहीं बन सकता। उन का विश्वास महंगा है। दिल वह अपना बहुत नहीं बाँटते, वह भीड़ के आदमी नहीं। भीड़ में वह अकेले हैं। न वह भीड़ को दिशा दे सकते हैं, न उसका साथ दे सकते हैं। और वह प्रवास-भीरु तो क्या पब्लिक भीरु हैं।

बहुत कुछ उनको अनायास सिद्ध है। कविता में शब्द और तुक। सफर में तीसरा दर्जा। भूषा में सादगी, वेश में चिरगांवता, प्रेम में अपत्य प्रेम, वाणी में मित भाषण और साहित्य में सुरुचि। इन सभी के लिये प्रयासी को प्रयास लगता है। राष्ट्रीय व्यक्ति के लिए रेल का तीसरा दर्जा अभी तक सहज नहीं है, वह गौरव का विषय है। किन्हीं को जरूरत रहती है कि कोई उन्हें देखे, किन्हीं को जरूरत रहती है कि कोई उन्हें न देखे। यही हाल हमारे साथ सादगी का है। पर मैथिलीशरण जी को मालूम होता है कि दूसरी कोई बात मालूम नहीं।

वह अंग्रेजी नहीं जानते। पर अंग्रेजी में चलने वाली राजनीति को वह जानते हैं। सवेरे डाक आई कि चिट्ठियां देखीं फिर अखबार ले लिये। अखबार जल्दी उन से नहीं छूटते। वह बातों को जान कर नहीं, जिन्हें जानते हैं उनके विषय में कुछ महसूस करके दम लेते हैं। वह अपने जानने को मानो हृदय के साथ भी जोड़े रखना चाहते हैं। इससे आधुनिक विचार-धाराओं से वह अवगत ही नहीं रहते, उनके प्रति सहानुभूति रख सकते हैं। उनकी अवस्था बौद्धिक नहीं है, बौद्धिक तल पर है। अतः वह बन्धनहीन और उदार हैं और धीरता से प्रश्नों की गहराई छू सकते हैं। बारीक बातें उनसे नहीं बचतीं और मानस सम्बन्धों की परख में वह सूक्ष्मदर्शी हैं। चिरगांव से न टलना उनके हक में भीरुता ही नहीं है, साधना भी है। प्रकृति से अधिक वह साधना से कवि हैं।

श्री जैनेन्द्र कुमार जैन

(हँस' बनारस के

'रेखाचित्र' अंक से)

(२१)

चैन नगर के चार बेकार

कुछ समय पूर्व उत्तरी भारतवर्ष में दो पहाड़ियों के बीच में एक हरा-भरा गांव आबाद था, जिसका नाम चैन नगर था। यहाँ के लोग सीधे-सादे और मेहनती थे। अपना अपना काम अपने अपने हाथ से करते थे और किसी को किसी से कोई शिकायत न थी।

चैन नगर के लोग दिनभर काम करते थे, इसलिए वहां बीमारियां न थीं, दवाइयाँ न थीं, वैद्य न थे। वहां के लोग अमन-अमान और प्यार-मुहब्बत से रहते थे। इसलिए वहां कचहरियां न थीं, वकील न थे, जेलखाने न थे। वहां के लोग सरल-स्वभाव के थे, इसलिए वहां चोरियां न थीं, न वहां पुलिस थी, न बन्दूकें, न तलवारें, न तोपें थीं। वहां के लोग जितेन्द्रिय थे; इसलिए वहां रूप, यौवन की दूकानें न थीं, न शराब थी, न कत्ल-खून की घटनाएं होती थीं। वहां के लोग अतिथि-सत्कार को धर्म समझते थे, इसलिए वहां न धर्मशालाएं थीं, न सराएं थीं, न होटल थे। वहां मेहनत, मजदूरी के मोटे कानून के सिवा दूसरा कोई कानून न था। वह कानून यह था कि जो काम करे खाये, जो बेकार रहे भूखों मरे। सब काम करते थे, सिर्फ चार आदमी ऐसे थे, जिनको बेकारी पसन्द थी। वे भूखों मरते थे और दूसरों के दान पर जीते थे। आखिर एक दिन उन्हें भी लोगों ने

गाँव से निकाल दिया। अब वहां सब काम करने वाले थे। बेकार कोई भी न था।

मगर शैतान को असभ्य मूर्खों की यह छोटी सी दुनियां पसन्द न आई, और उसने निश्चय कर लिया कि मैं इसे सभ्य बनाऊंगा और यहां के रहने वालों के लिए उन्नति और इकबाल के दरवाजे खोल दूंगा।

[२]

—दूसरे दिन शैतान के इशारे से एक खूबसूरत और अमीर सौदागर चैन नगर में आया और सारा गांव देखने के बाद बोला— अफसोस, तुम लोग बिल्कुल गंवार और असभ्य हो। पता नहीं, इस हाल में तुम जीते कैसे हो ?

लोगों ने यह बात सुनी, तो आश्चर्य से सौदागर का मुंह देखने लगे।

सौदागर ने कहा—मैंने सारे संसार की सैर की है, और मैंने बड़ी बड़ी अजीब चीजें देखी हैं। मगर ऐसा गरीब और दीन हीन गांव मैंने और कहीं नहीं देखा!

लोगों ने यह सुना और कहा— हमें तो यह मालूम ही न था। क्या हम अब सभ्यता नहीं सीख सकते ?

सौदागर ने उत्तर दिया— मुझे चार आदमी दे दो, और मैं इकरार करता हूं कि तुम्हारे गांव का एक एक आदमी सभ्य बन जायगा। मगर शर्त यह है कि वे चारों बेकार हों।

चैन नगर में एक भी बेकार न था। लोग निराश होगये और बोले— अफसोस! हमें क्या खबर थी कि कभी हमको बेकारों की भी जरूरत

पड़ जायगी। यह खबर होती तो हम उन चार बेकारों को गांव से कभी न निकालते।

मगर सौदागर हताश न हुआ, और उसने उन्हीं लोगों में चार आदमी चुन लिए। उसने उन्हें खाने को अच्छे अच्छे भोजन दिए, पहनने को कीमती और महीन वस्त्र दिए और उनसे कहा— जाओ गांव की सैर करो। तुम्हारा यही काम है।

और वे चार गांव में घूमने लगे। मगर कुछ ही दिनों में उनका जी उदास हो गया, और उन्होंने सौदागर से कहा– हमें कुछ काम दीजिए। हम बेकार नहीं रह सकते।

सौदागर ने मुस्करा कर उनकी तरफ देखा, और धीरे से कहा– तुम बड़े आदमी हो। बड़े आदमी काम नहीं किया करते। काम करना मजदूरों और कुलियों का काम है।

चारों बेकार यह सुन कर कि अब वे बड़े आदमी बन गये हैं, खुशी से फूले न समाए और बोले –तुम कितने दयालु हो ? तुमने हमें बड़ा बना दिया है। अब सचमुच हमें काम करने की क्या जरूरत है ? हमारा काम दूसरे लोग किया करेंगे। मगर हमारे पास उनको देने के लिए तो पैसा भी नहीं है। न हम खेती करते हैं न हमारे पास अनाज है।

सौदागर एक बार फिर मन को मोह लेने वाले ढंग से मुस्कराया और बोला— तुम बड़े आदमी हो। बड़े आदमी अपना काम बिना कुछ दिए ही करा लिया करते हैं। मगर मैं 'तुम्हारे लिए खर्च करने को भी तैयार हूं। उसके बाद उसने उनसे कहा— इस गांव के लोगों को बुला कर उनसे कहो कि वे तुम्हारे लिए पांच महल बना दें। जो खर्च होगा, मैं दूंगा।

दूसरे दिन कई लोगों ने खेती-बारी का काम बन्द कर दिया, और महल बनाने लगे।

महल बन गये। यह महल बड़े विशाल और सुन्दर थे। इन्हें देख कर दिल की कली खिल जाती थी। मगर गांव की फसल मारी गई। सौदागर ने लोगों को रुपया दिया, मगर रुपए से किसी का पेट न भरता था। लोग ज़ार ज़ार रोते थे और कहते थे— हाय ! अब क्या होगा।

सौदागर ने एक बेकार को बुला कर कहा— कुछ आदमियों को नौकर रख लो। उन्हें बाहर भेज कर सस्ते दामों में अनाज खरीदो और यहां मंगवा कर महंगे दामों में बेचो। जो बचे वह तुम्हारा हिस्सा है।

उस बेकार ने ऐसा ही किया, यह पहला अवसर था जब चैन नगर के निवासियों ने बाहर से आया हुआ अनाज खाया। उन्होंने कहा— यह आदमी कितना नेक है ? अगर यह न होता तो हम और हमारे बाल-बच्चे भूखे मर जाते।

अब उनको बाहर की चीजें अच्छी मालूम होने लगीं, और अनाज मंगवाने वाले उस बेकार ने कई और चीजें मंगानी शुरू कीं। कुछ ही महीनों में वह अमीर होगया और उसने कई दूकानें खोल कर उन पर अपने कारिन्दे बैठा दिए। मगर वह अपने हाथ से कोई काम न करता था, उसका सारा काम दूसरे लोग करते थे।

[३]

दूसरे साल जब फसल खड़ी थी, तो एक रात को कुछ हरिण आये और फसल का कुछ भाग खराब कर गये। सौदागर ने गांव के लोगों को गांव के चौक में जमा किया, और कहा— इस तरह तो यह जानवर तुम्हारी सारी फसल खराब कर जायेंगे। मगर तुम कहो तो

मेरा आदमी ऐसा प्रबन्ध कर सकता है कि फिर कभी ये हरिण तुम्हारे खेतों के पास तक न फटक सकें।

चैन नगर के लोगों ने कहा–– देखो, यह आदमी कैसा दाना है। अगर यह न होता, तो हमारे सारे खेतों को हरिण ही खा जाते।

अगले दिन दूसरे बेकार ने गांव के कुछ लोगों को लाठियां देकर खेती की रखवाली के लिए खड़ा कर दिया। जब फसल कटी तो उसने अपने नौकरों से कहा– आधा अनाज मेरे पास उठा लाओ, आधा उनके लिए रहने दो। नौकरों ने ऐसा ही किया। बेकार ने तीन हिस्से आप रख लिए, एक हिस्सा नौकरों को बाँट दिया।

यह पहला अवसर था जब चैन नगर के लोगों ने दूसरों के द्वारा रक्षा की सुविधा का अनुभव किया। और यह सोचने की जरा भी परवाह न की कि हिरण कितना खाते और हमने कितना दिया? मगर लोगों को जो अनाज मिला, वह उनकी जरूरत से कम था। चैन नगर में चोरियां होने लगीं। खेतों के रक्षक ने कहा— अगर तुम चाहो तो मैं तुम्हारे मकानों के द्वार पर अपने पहरेदार खड़े कर सकता हूं। फिर क्या मजाल जो तुम्हारा एक सेर अनाज भी चोरी चला जाए?

गांव वालों ने कहा– बड़ी खुशी से।

मकानों और दूकानों पर पहरेदार खड़े होगये। चोरी बन्द हो गई, मगर चोरी को रोकने के लिए जो खर्च हुआ वह चोरी की रकम से कहीं ज्यादा था।

इस तरह दूसरे बेकार का कारबार भी दिन दूनो रात चौगुनी उन्नति करने लगा। थोड़े ही दिनों में उसने भी कई महल खड़े कर लिए। मगर वह अपना काम आप न करता था, उसका सारा काम दूसरे लोग करते थे।

कभी वह दिन था जब चैन नगर में सब लोग गरीब थे; मगर खाने-पीने की किसी को कमी न थी। अब कारबार चलता था मगर लोग भूखों मर रहे थे। परिणाम यह हुआ कि लड़ाई झगड़े शुरू होगये। वह प्यार, वह मुहब्बत, वह सादगी, वह पवित्रता न जाने कहां चली गई। अब लोगों को एक दूसरे का ज़रा भी ख्याल न था। बात बात में छुरियां चलने लगीं। चैन नगर में बेचैनी फैल गई। सौदागर ने यह दशा देखी, तो लोगों से कहा— अगर तुमने इन बातों का इलाज न किया तो मुझे डर है कि तुम्हारी प्राचीन और सुन्दर नगरी नष्ट हो जायगी! क्या तुम कोई ऐसा प्रबन्ध नहीं कर सकते कि ऐसी दुर्घटनाएं सदा के लिए बन्द हो जाएं?

लोगों ने सौदागर की तरफ देख कर सिर झुका लिया, और धीरे से कहा— कुछ आप ही करें। हमसे तो कुछ न होगा।

सौदागर ने जवाब दिया— अच्छा, हम सोचेंगे।

उसी दिन एक किसान और एक महाजन में झगड़ा हो गया। महाजन का कहना था कि इसके जिम्मे मेरा २० सेर अनाज है। किसान कहता था कि यह झूठा है, मुझे इसका केवल १० सेर अनाज देना है। दोनों लड़ते थे, झगड़ते थे और एक दूसरे को गालियां देते थे। एक दूकानदार ने इसकी खबर जाकर सौदागर को दे दी। सौदागर ने उसी समय एक आदमी भेज कर दोनों को अपने पास बुलाया और तीसरे बेकार से कहा— इनके झगड़े का फैसला कर दो।

[४]

बेकार ने दोनों की बातचीत सुनी और फिर किसान से कहा— तू ने महाजन से २० सेर अनाज भी लिया है, और उसे गालियां भी दी हैं; इसलिए मेरा फैसला है कि तू इसे २५ सेर अनाज दे।

महाजन ने खुश होकर कहा– कैसा अच्छा फैसला है । २० सेर न देता था, अब २५ सेर देना पड़ा ।

किसान को २५ सेर देना ही पड़ा।

अब उस बेकार ने महाजन की तरफ देख कर कहा– तेरे पास क्या प्रमाण है कि तूने इसको २० सेर अनाज दिया है ? उसका बयान है कि उसने केवल १० सेर लिया है ।

महाजन चुपचाप खड़ा जमीन की तरफ देखता रहा । उसके पास कोई प्रमाण न था ।

बेकार ने कहा–तुझे केवल १० सेर अनाज मिल सकता है, मगर तू ने उसे गालियां दी हैं और गांव के लोग इसकी गवाही देने को तैयार हैं, गालियां देने का तुझे कोई अधिकार न था । क्या तेरे पास इसका कोई जवाब है ?

महाजन चुपचाप खड़ा भूमि की तरफ देखता रहा । उसके पास कोई जवाब न था ।

बेकार ने कहा– मेरा फैसला यह है कि तेरे १० सेर अनाज में से ५ सेर जुर्माने का काट लिया जाए, ५ सेर तुझे दे दिया जाए ।

महाजन क्या कह सकता था ?

किसान ने खुश होकर कहा– अच्छा फैसला है । १० सेर न लेता था, अब पाँच सेर ही लेना पड़ा ।

लोगों ने यह सुना तो कहा– हम कैसे खुश नसीब हैं । अगर यह आदमी न होता तो हम आपस में लड़ लड़ कर मर जाते ।

इस तरह तीसरे बेकार का काम भी चल पड़ा और थोड़े ही दिनों में उसके पास भी कई आलीशान महल होगये । मगर वह

भी कोई काम अपने हाथ से न करता था । उसके सारे काम दूसरे लोग किया करते थे !

मगर अभी चौथा बेकार ग़रीब था । सौदागर ने उसके लिए कमाई का कोई साधन सोचने की बहुत कोशिश की । सोच सोच कर उसके सिर में दर्द होने लगा, उसकी कनपटियां फटने लगीं, मगर उसे कोई रास्ता दिखाई न दिया । हार कर वह शैतान के पास गया, और उसे तीन सालों की कहानी सुना कर बोला— गांव की पौन आबादी पर अब हमारा अधिकार हो चुका, मगर अभी एक बेकार बाकी है । अगर उसके लिए कोई अच्छा सा काम निकल आए तो चैन नगर का एक एक आदमी हमारी मुट्ठी में आजाए !

शैतान ने अपने नायब को पीठ पर धीरे से थपकी दी और अपनी उल्लू की सी गोल गोल और छोटी छोटी आंखों से उसकी तरफ देख कर कहा— जाओ वहाँ एक लोहे की चक्की लगा दो । बाकी मैं आप समझ लूंगा ।

[५]

सात दिन के अन्दर अन्दर चैन नगर के बाहर खुली जगह में लोहे की चक्की लग गई । रात के समय शैतान ने आकर उसमें अपनी शैतान-शक्ति दाखिल कर दी । दूसरे दिन से इसने गेहूं, बाजरा, मक्की और चने का आटा पीसना शुरू कर दिया और यह आटा इतना महीन था, कि गांव के गंवार लोग देख कर दंग रह गये । उन्होंने आज तक ऐसा आटा न खाया था । एक ही दिन में चैन नगर की सैकड़ों पत्थर की चक्कियां बेकार होगईं, और एक ही दिन में चैन नगर की सैकड़ों विधवा स्त्रियाँ और बिना बाप के बच्चे भूखों मरने लगे । मगर और लोग खुश थे, और अपने सौभाग्य पर फूले न समाते थे !

चौथा बेकार सामने एक तख्त पोश पर बैठ हुक्का पीता रहता था। वह सांझ के समय इतना कमा कर उठता था, जितना गांव का कोई दूसरा आदमी न कमाता था। उसने सौदागर की राय से वहां और भी कई कलें लगा दीं, और गांव के कई और ग़रीबों को भी दाने दाने का मोहताज कर दिया। इस तरह शैतान की मेहरबानी से चौथा भी अमीर होगया। मगर यह भी अपना कोई काम अपने हाथ से न करता था। उसका सारा काम गांव के दूसरे लोग करते थे।

चैन नगर आज भी उत्तरी भारत की उन दो पहाड़ियों के बीच में उसी तरह आबाद है। अब वहां देखने योग्य कई इमारतें बन गई हैं। वहां कचहरियां हैं, वहां सराएं और धर्मशालाएं हैं, वहां बड़े बड़े कारखाने हैं, वहां ऊंचे ऊंचे महल हैं। और शहर के बीचों बीच चौक में उस सौदागर का सत्तर फुट ऊंचा बुत खड़ा है। अगर कोई मुसाफिर उधर जा निकलता है तो गांव की शान-शोभा देख कर उसकी तबीयत हरी हो जाती है, उसका हृदय-कमल खिल उठता है। मगर अब वहां का कानून। बदल गया है। पहले सब काम करने वाले खाते थे, बेकार भूखों मरते थे। अब बेकार ऐश करते हैं, काम करने वाले भूखों मरते हैं।

—श्री सुदर्शन

['नगीने' से]

(२३)

पीपल

मैं अपने जीवन की पगडंडी पर निरन्तर आता जाता एक पीपल का पेड़ देखा करता हूँ।

उसकी ठीक चोटी पर कुछ बड़े बड़े काले कुरूप गिद्ध बैठे रहते हैं। साँझ के स्वर्णिम और रक्ताभ आकाश-पट पर वे किसी कुशल कलाकार के खिंचे छाया-चित्र से लगते हैं। दूर से ही जब वह रेल से कटे किसी शव को देखते हैं तो भयंकर शब्द कर हवा में उठते हैं, और उनके पंखों की तुमुल ध्वनि से आकाश भर जाता है। फिर चुपचाप योगियों-सी मुद्रा धारण कर वे शव के चतुर्दिक मंडलाकार बैठ जाते हैं—किसी प्रतीक्षा में।

जिस ताल के किनारे यह पुराना पीपल खड़ा है, वहां चारों ओर अनेक नये घर बन गये हैं। परन्तु पीपल के नीचे कोई घर नहीं बनाता। लोग सोचते हैं कि पीपल भूतों का निवासस्थान है।

इस पीपल की जड़ें धरातल में दूर तक फैल गई हैं। वर्षों से लोग इस पर जल चढ़ाते हैं और सांझ के समय कभी-कभी छोटा टिमटिमाता दिया जला जाते हैं। इसके पास ही एक छोटा-सा मन्दिर भी है जो अब उजड़ा पड़ा है। चिलचिलाती दोपहर में कभी कोई चरवाहा वहां लेट कर अपना बेसुरा राग छेड़ता है।

इस निरन्तर बहते—बदलते जीवन में यह पीपल एक स्थायी चिन्ह है। अतीत का यह एक प्रहरी यहां अचल खड़ा है। जब भयानक आंधी में अन्य पेड़ उखड़ जाते हैं और घर गिर जाते हैं इस पीपल के पत्तों में केवल क्षुब्ध सागर की लहरों जैसी सनसनाहट भर जाती है।

कभी कभी मैं सोचता हूँ, क्या मैं भी इसी पीपल के समान हूँ। मेरी जड़ें दूर तक फैलीं, धरती का बंदी, अतीत के भूतों का डेरा ?

अपने जीवन की पगदंडी पर आता जाता मैं निरन्तर एक पीपल का पेड़ देखता हूँ, और अनेक विचार मेरे मन में उमड़ते हैं।

—प्रकाशचन्द्र गुप्त

('रेखाचित्र' से)

(२४)

विज्ञान के कुछ चमत्कार

(१)

आकाश अनन्त है और अनन्त होने में ही उसका रहस्य है।

मनुष्य ने उसमें पूर्व से सूर्य उदय होता देखा। रात में उसे छोटे बड़े तारों से जगमगाता पाया। चन्द्रमा की शीतल चांदनी का सुख देने वाला स्पर्श उसे इसी आकाश में से हुआ।

बादल उमड़े—गरजे और बरसे। न जाने कहां से आकाश में कितना फासला तय करके वे यहां आये? बिजली भी तो चमकी, इन्द्र-धनुष सतरंगी छटा से छिटकी, वहीं ऊपर से कभी पानी की बूंदें गिरीं तो ओले भी टपके। वायु की हल्की लहर, या आंधी, ये सभी आकाश में चलती दीखीं!

और, ओहो! ये चिड़ियां! पर फैला कर चहचहाती हुई कैसी इसी आकाश में कभी उड़ती, कभी तैरती फिरती हैं। ये जरा सी पिद्दी, ये कबूतर, ये बाज यहां तक कि यह मोर भी सभी तो कभी-कभी आकाश की सैर कर लेते हैं! ये चीलें कितनी ऊंची उड़ गयी हैं! मनुष्य का मन इन से भी ऊंचा उड़ता है। वह तारों तक पहुँच कर उनका भेद जानना चाहता है; वह अपने बचपन के चन्दा मामा की बुढ़िया से बात करना चाहता है, वह बादलों पर बैठ कर बिजली

का कोड़ा बनायेगा। इन्द्र-धनुष के रंग में अपने शरीर और वस्त्रों को रंगेगा। वह आकाश में, पर लगा कर इधर से उधर खुल कर उड़ेगा। पर विचारा आदमी। करेगा कैसे? विधाता ने पंख नहीं दिये। आंखों की दृष्टि तीव्र नहीं बनाई। हत बुद्धि, वह क्या यों बैठा ललचाता ही रहेगा? नहीं, वह हत बुद्धि नहीं, उसने 'विज्ञान' सिद्ध किया और इस सिद्धि से अपनी आकांक्षाओं से भी अधिक प्राप्त कर लिया।

विज्ञान से उस ने बैलून बनाये। इन्हें हम 'गुब्बारा' कहते हैं।

विज्ञान के द्वारा जब वह मौसम की खोज में लगा तो उसने जाना कि पृथ्वी के ठीक ठीक मौसम का ज्ञान बिना आकाश की परीक्षा किये नहीं हो सकता। आकाश की गर्मी सर्दी का पता रहने से पृथ्वी की बहुत सी बातों के सम्बन्ध में उपयोगी वैज्ञानिक कथन दिये जा सकते हैं।

+ + + +

विज्ञान से उसने हवाई जहाज का निर्माण किया।

बैलून से उड़ने में, और बहुत ऊंचाई तक भी उड़ जाने में आदमी को जो आनन्द मिला, उस से वह संतुष्ट नहीं हो सका। प्रकृति के इशारों पर नाचने वाला गेंद सा गुब्बारा बिल्कुल आदमी के शासन में नहीं था। वह उसमें बैठकर चिड़ियों के उड़ने का आनन्द नहीं उठा सकता था। वह ऊंचे से ऊंचे आकाश में उड़कर, आकाश के उस रहस्य को जानने की सुविधा पा सका था, उसके वैज्ञानिक मस्तिष्क को लाभ था। पर उससे इच्छानुसार उड़ने फिरने की उत्कण्ठा शान्त नहीं हुई। उसी ने हवाई-जहाज को जन्म दिया।

+ + + +

बैलून हवा से हल्का होने के कारण ऊपर उठता चला जाता है।

उसके ऊपर उठने के लिये हवा का होना, वातावरण का होना आवश्यक है, हवाई जहाज हवा की ताकत से ऊपर उठता है। उसका तो कम हवा में चलना कठिन। जहां बिल्कुल न हो वहां एक दम असम्भव। तो फिर ये जहां तक हमारा वातावरण है, वहीं तक जा सकते हैं। वातावरण के ऊपर का पच्चीस मील जो भाग है उसमें भी पूरी ऊंचाई तक जाना मुश्किल है। फिर उस से आगे जहां वातावरण नहीं— केवल शून्य है, वहां कौन जायगा? विज्ञान का उत्तर है—रॉकेट! निश्चय ही विज्ञान जादू है।

+ + + +

रॉकेट की ओर वैज्ञानिकों का ध्यान लगा हुआ है। उनकी प्रबल उत्कण्ठा है, सितारों की यात्रा करने की। बड़े बड़े रॉकेट बनाये जा रहे हैं। असम्भव को संभव करने की सरगर्मी का उद्योग हो रहा है। और वैज्ञानिक समझता है कि वह यह करामात शीघ्र ही कर दिखायेगा।

+ + + +

(२)

पैदा होते समय से ही मनुष्य भूमि पर चलता-फिरता रहा है। उसने पहले अपने पैरों से ही काम किया, फिर हाथी, घोड़े, गधे, बैलों पर सवारी गांठी, और जरूरत पड़ने पर उसने गाड़ियां बनाईं। उनमें बैल जोते, भैंसे जोते, या घोड़े जोते। ये सब काम चूं-चूं, चर-चर करते धीरे धीरे चलते थे। थोड़ा और तेज चलने के लिये इक्के तय्यार किये गये, कुछ सुखद तांगे बनाये गये। कहीं कहीं रिक्शा भी। हर हाल में आदमी इस कोशिश में रहा कि तेज चलने वाली और सुख पहुँचाने वाली सवारियां बनें।

विज्ञान की दृष्टि भी इधर पड़ी। विज्ञान कभी कोई मामूली परिवर्तन नहीं करता, वह तो एकदम महान् परिवर्तन की बात सोचता है। और वह जब सोचना शुरू करता है तब बहुत मामूली-सी रोज-मर्रा की किसी बात से ही शुरू करता है। देखिये विज्ञान या उस का अवतार वैज्ञानिक, रसोई घर में चूल्हे के पास बैठा ताप रहा है। थोड़ी सर्दी पड़ रही है। वह मां की गोद की गर्मी पा नहीं सकता। इस लिये बैठा हुआ है चूल्हे के पास। उस पर एक पतीली में पानी औट रहा है। पानी को ढकने के लिये एक ढक्कन पतीली पर रखा है। खन-खन, छन-छन की ध्वनि उस पतीली में से आ रही है। वैज्ञानिक की मां तो उस से यही मतलब निकाल रही है कि पानी खौलने लगा है; अब अधिक क्यों जलाया जाय? पर वह जो वैज्ञानिक बैठा है, उसका तो सिर घूम रहा है? पतीली का ढक्कन बार बार फुदक-फुदक कर क्यों गिर रहा है? कौन उसे उछाल रहा है? उस ढक्कन से अधिक ताकत की चीज हो तो उसे उठा सकती है। ढक्कन को उठाने गिराने वाली चीज भाप है, इस में तो कोई सन्देह नहीं। पर भाप क्या एक ताकत है? इस ताकत को क्या बढ़ाया नहीं जा सकता? और किसी काम में नहीं लाया जा सकता? देखना चाहिए। वैज्ञानिक उठ पड़ा और काम में लग गया। उस चूल्हे की पतीली ने उसको जो ज्ञान दिया वह थोड़े ही दिनों में स्टीम एंजिन (भाप का एंजिन) बना लाया। भाप का इंजन बना और नया युग आया। लोग समझ गये कि आग और पानी से एक ताकत पैदा की जा सकती है जो चीज़ों को चला–फिरा सकती है। उस ताकत को अनेकों जगह काम में लाया जा सकता है।

एक सोचने लगा इससे चरखा चलाएं, दूसरा सोचता गाड़ियों में लगाएं। दोनों अपने-अपने काम में लग गये। दूसरे ने भाप से चलने वाली गाड़ी तय्यार कर दी।

यह रेलगाड़ी कहलाई ।

और रेलगाड़ी ने चमत्कार कर दिखलाया ।

❀ ❀ ❀

विज्ञान की इस करामात ने मनुष्य को जमीन पर, जमीन के नीचे, पहाड़ों को चीरते हुए, पानी पर चल कर बहुत सुविधा दी है । पर रेलें तो बंधी हुई पटरियों पर ही चल सकती हैं । मामूली पक्की सड़कों पर तो उसको गम नहीं । वहाँ चलने के लिए भी विज्ञान की कोई कारीगरी होनी ही चाहिए । वह कारीगरी भी आज सर्वविदित है । उससे मनुष्य को कितनी सुविधा नहीं हुई है ।

और यह है मोटरकार !

सहारा का भयानक रेगिस्तान भी, जिसमें जाते आदमी की रूह काँपती थी, जिसकी जलती धूल आदमी के लिए मृत्यु संदेश से कम नहीं, आज मोटरकार से पार किया जा सकता है । यहां चलने वाली कारों में ऐसा प्रबन्ध रहता है कि धूल का एक भी कण अन्दर न जा सके ।

मोटर से पहाड़ों पर चढ़ाई भी संभव हो गई है । इनसे बड़े-बड़े खेतों में हल चलाए जाते हैं । खेत काटे जाते हैं ।

❀ ❀ ❀

कन्दराओं के द्वारा—सुरंगों के द्वारा—मनुष्य ने पृथ्वी के भीतर अपने लिए रास्ते बनाये हैं और रहने के स्थान भी बनाये हैं । इन सब कामों में उसके विज्ञान और बुद्धि कौशल का जौहर स्पष्ट प्रकट होता है । पर क्या ऐसा भी किसी ने सोचा था, पहले ?

आज का वैज्ञानिक जहाँ भी शक्ति का स्रोत पाता है, वहीं वह उसका उपयोग करने की विधि सोचने लग जाता है । कई ज्वालामुखियों

का कहीं २ व्यापारिक सुविधा के लिए उपयोग किया गया है। इटली के लारडेरेल्लो की व्यापारिक मशीनों को चलाने के लिए एक ज्वालामुखी से ही भाप पहुंचाई जाती थी।

❀ ❀ ❀

(३)

वरुण लोक तो भूलोक और आकाशलोक सभी से भयंकर है। पानी का परदा अनेकों शत्रुओं को छिपाये रहता है। कहीं कुहरा मार्ग को अन्धकार से भर देता है। ज्वारभाटा उसको अत्यन्त चंचल करता रहता है। उसमें भीषण तूफान मजबूत से मजबूत वस्तु को चकनाचूर कर सकते हैं। तैरते हुए बर्फ के पहाड़ों को देखकर ही प्राण जम जाते हैं। गरम पानी की धाराओं से नाक में दम आ जाता है। इतना बड़ा पानी का भंडार, फिर भी पीने को एक बूंद नहीं।

परन्तु आज विज्ञान ने समुद्र की छाती पर मूंग दल दी है। वह उसकी पैदा की हुई दुर्दमनीय बाधाओं को रौंदता हुआ फक-फक छक-छक करता जहाज चलाता है। वह उसकी रहस्यपूर्ण गहराई की थाह लेने दूर दूर तक उसकी अन्धकोठरियों में घुसता फिरता है।

—प्रो० सत्येन्द्र एम०ए०

['विज्ञान की करामात' से]

धरती की रामकहानी

तुम्हें यह जानकर आश्चर्य होगा कि जिस सूर्य की प्रदक्षिणा करते करते मुझे दो अरब साल से अधिक अर्सा हुआ है उसी सूर्य के वंश में मेरा जन्म हुआ है।

सन्तान के अभाव में उन दिनों यह सूर्य शून्य में ही कुढ़ता रहता। अकस्मात् एक दिन एक महाज्योति इससे कई गुणा विशाल और उज्ज्वल, इसके बिल्कुल पास से चल पड़ी। उसके प्रभाव से खिंचकर सूर्य का एक भाग बिछुड़ गया। पर सुशील था कि जन्मते ही पिता (सूर्य) की परिक्रमा करने लगा। लगातार परिक्रमा करते करते उसके खण्ड-खण्ड हो गये, पर उसने उफ तक न की। यही खण्ड आपस के आकर्षण से मिलते—बिछुड़ते दस ग्रह पिण्डों में बनते गये, और इन्हीं में से मेरा भी उद्भव हुआ।

आज तुम मेरी मनोरम चाल-ढाल को देखकर फड़क उठते हो, पर मेरे छुटपन की यातनाओं को सुनोगे तो कांप उठोगे। यह जो आज मुझे घेरने वाला वातावरण मुझसे भिन्न दिखता है उन दिनों मेरा एक अभिन्न अंग था और यह चन्द्रमा भी मेरे ही हृदय का एक टुकड़ा है।

शुरू से ही मैं ठोस नहीं थी, सर्वप्रथम अवस्था मेरी गैस की अवस्था थी। गैस के परमाणु जुड़ते जुड़ते भाप का एक मेघ-सा बनते

गये। केन्द्र का भाग भंवर खाते खाते ठोस होने ही लगा था कि परस्पर के संघर्षण से उसका तापमान बढ़ गया और उसे पिघलना पड़ा। लोहार की भट्टी तुमने देखली है न ? कैसे लोहे को पिघला देती है ! ऐसे ही एक विशाल और भीषण भट्टी में उस समय मेरा शरीर घड़ा जा रहा था। पिघले हुए तरल–भाग से ही मेरा शरीर बना और बचा हुआ गैस भाग मुझसे अलग होते हुए भी वातावरण के रूप में मुझे घेरे रहा। तब से लगातार यह मेरा भाई मेरी रक्षा में कटिबद्ध रहा है।

हां, मैं चन्द्रमा के बारे में कहना भूल ही गई। क्या करूं, इनसानों की हैवानी जंगों ने मेरा दिमाग परेशान कर रखा है। खैर उस महाज्योति ने जैसी उथल-पुथल हमारे पूर्वज सूर्य में मचा रखी थी, वैसी ही उथल-पुथल इस नये सूर्य ने मुझमें भी मचा दी। मेरा तरल होता हुआ हृदय का मध्य-भाग सूर्य की ओर इतना खिंचा कि उसे अलग होना ही पड़ा। अलग होकर भी मुझे वह भूला नहीं, बड़ी श्रद्धा से मेरी परिक्रमा करता रहा। हमारे सौरपरिवार की यही रीत है। मैं भी तो सूर्य की परिक्रमा करती रहती हूं !

अपने दिल के टुकड़े का वियोग मुझसे सहा न गया। मां का दिल ठहरा। शुरू शुरू में तो खामोश आहें भरता रहा, पर बाद में हाहाकार मचा उठा। यही हाहाकार आजकल भी तुम्हें प्रशान्त, हिन्द, अटलांटिक, आदि महासागरों में सुनाई पड़ता है।

यह हाहाकार कैसे शुरू हुआ, यह भी सुनाती हूं मेरा पिघलता हुआ भाग ऊपरी सतह पर जम रहा था और उसके नीचे तरल पदार्थों का घोर संघर्ष जारी रहता। मेरे अन्दर अशान्ति तो थी ही, बाहर भी चारों ओर अशान्ति की ही कशमकश हो रही थी। जहां कहीं मेरी पपड़ी दुर्बल मिली वहीं से मेरे अन्दर की अशान्ति उबलते

हुए लावे के रूप में उछल पड़ी और सुदूर आकाश तक अपना गंधक और हाइड्रोजन पहुँचा गई। इस हाइड्रोजन का ज्योंही आक्सीजन के साथ उपयुक्त (२ : १) मेल हुआ, त्यों ही पहली बार आकाश के आंसू बरसने लगे। बरसे तो सही, पर मुझ तक पहुँचने से पूर्व ही मेरी जलन की लपटों से सूख गये। बरसों के बाद जब मेरी जलन शान्त होती गई, तब कहीं आकाश की यह करुणा बूंदे मुझ तक पहुँचने लगीं। शीघ्र ही इन बूंदों की ऐसी झड़ी लगी कि सौ-सौ दो-दो सौ इंच पानी मेरे हृदय में जमता गया। यह आंसू भी क्या थे? खौलती जल धाराएं थीं। मेरी गीली हड्डियों (चट्टानों) पर अभी भी इन आंसुओं के चिन्ह अमेरिका आदि में मिलते हैं।

इस प्रकार मेरे तरल भाग को घेरे रहने वाला गैसवितान भी फटता गया और उसके स्थान पर पतली और साफ वायु का समुद्र लहराने लगा जिसमें तैरती हुई सूरज की किरणें मुझे चूमने को दौड़ती आईं। बरसों के बाद मुझे अपने पिता का दुलार मिला। क्या बताऊं उस दिन मुझे कितना उल्लास था—अपने पीड़ा भरे जीवन में उस दिन मैं पहली बार मुस्करा सकी!

—पुष्प

(२६)

शकुन्तला की विदा

कण्व—आज शकुन्तला जायगी। इस कल्पना ने ही मेरे हृदय को विषाद से भर दिया है। आंसुओं को रोकता हूँ, तो वे गले को गीला कर आवाज को रूंधा देते हैं। सामने की चीजें भी धुन्धली हुई जा रही हैं। मैं बनवासी हूं, तो भी स्नेह से इतना विह्वल हो रहा हूं, तो गृहवासी अपनी कन्या को विदा करते समय कितने दुःखित होते होंगे!

गौतमी—बेटी शकुन्तला, देख, वह तुम्हारे पिता आ रहे हैं—उनकी आंखों में डबडबाये आंसू तुम्हारे आलिंगन को व्याकुल हैं। उठ, आशीर्वाद ले!

शकुन्तला—(चरणों में लिपटी हुई) पिता जी! (गला भर आता है)।

कण्व—बेटी! भगवान् तुम्हारा कल्याण करें! जैसे शर्मिष्ठा ने ययाति का प्रेम प्राप्त किया था, उसी तरह तुम भी पति-प्रेम प्राप्त करो और पुरु की तरह तुम्हें भी सम्राट् पुत्र प्राप्त हो।

गौतमी—बेटी, महर्षि कण्व ने यह आशीर्वाद नहीं दिया है, बल्कि वरदान दिया है तुम्हें।

कण्व—बेटी, जिसमें तुरत आहुति पड़ी है, इस यज्ञाग्नि की प्रदक्षिणा कर लो। यह यज्ञाग्नि तुम्हारा मंगल करे और इसकी हवि की सुगन्ध की तरह तुम्हारी कीर्ति दिग् दिगन्त में फैले।

[शकुन्तला यज्ञाग्नि की प्रदक्षिणा कर रही है]

कण्व—ओ शारंगरव, ओ शारद्वत !

दोनों शिष्य—गुरुदेव।

कण्व—बेटी, अपनी बहन को मंगल पथ पर ले जाओ।

दोनों शिष्य—बहन, शकुन्तले, हम अब चलें।

कण्व—ओ तपोवन-तरुओ ! जो शकुन्तला तुम्हें सींचे बिना जल भी पीना नहीं चाहती थी; जो अलंकार की अनुरागिनी होने पर भी मारे स्नेह के तुम्हारे पल्लवों को नहीं तोड़ती थी; तुम्हारे पहले फूल को देख कर जो उत्सव मनाने लगती थी, वह आज अपने पति के घर जा रही है, तुम लोग उसे आज्ञा दो !

और बेटी—कमल के पत्तों से हरे-भरे सरोवर तुम्हारे मार्ग को सुन्दर बनावें, घनी छाया वाले वृक्ष सूर्य के ताप से बचावें, रास्ते की धूल में कमल-पराग की कोमलता हो, और शान्त-स्निग्ध पवन तुम्हारे पीछे-पीछे पंखा झलता हुआ चले।

[कोयल का स्वर]

शारंगरव—अरे, यह कोयल कूक उठी ! पिता जी, आपकी आज्ञा मान कर वन-देवता ने इस कूक के बहाने शकुन्तला को विदा का सन्देश दे दिया !

गौतमी—हां हां बेटी ! वन देवता ने तुम्हें जाने की अनुमति दे दी, उन्हें प्रणाम करो।

शकुन्तला—सखि प्रियम्वदे, आर्यपुत्र की दर्शन-लालसा मुझे आगे खींच रही है, किन्तु आह, मेरे पैर इस आश्रम को छोड़ने के लिए उठ नहीं रहे हैं।

प्रियम्वदा—तुम्हारी ही यह दशा नहीं है, सखि, सारे आश्रम को देखो—हरिणी चबाती हुई कुश को उगले दे रही है; नाचती हुई मयूरी अचानक रुक गई; और लताएं पीले पत्ते गिरा कर मानो आंसू टपका रही हैं!

शकुन्तला—पिता जी, जरा मुझे इस लता-बहिन माधवी से अनुमति लेने दीजिए।

कण्व—मैं जानता हूं बेटी, तुम्हारा उस पर कितना स्नेह है। देख, वह तुम्हारी दाहिनी तरफ है!

शकुन्तला—(लता से लिपटती हुई) बहिन माधवि, शाखा-बाहुओं से मुझे कस लो, क्योंकि आज से फिर भेंट नहीं होगी हमारी-तुम्हारी! बहिन अनुसूया, सखि प्रियम्वदे, इस माधवी-लता को तुम्हें ही सौंपे जा रही हूं, सखियो!

अनुसूया—(कातर स्वर में) प्यारी सखि! ओह, हमें किसे सौंपे जा रही हो?

कण्व—बेटी अनुसूये, प्रियम्वदे! तुम लोग यह क्या कर रही हो? रोओ मत बेटियो .....शकुन्तला को ढाढ़स बंधाओ!

शकुन्तला—(आंसू पोंछती हुई) गर्भ-भार के कारण आश्रम के आस-पास ही मंद मंद घूमती रहने वाली यह हिरनी जब सुख-पूर्वक बच्चा दे ले, तो उसकी खबर मुझे जरूर दीजिएगा; भूलिएगा नहीं पिता जी!

कण्व—तुम्हारा अन्तिम आग्रह, और मैं भूलूं?

शकुन्तला—और यह कौन मेरे पैरों से लिपटकर आंचल ढीला कर रहा है ।

कण्व—कुश के नुकीले अग्रभाग से जिसका मुंह छिल जाने पर तुमने बार-बार इंगुदी का तेल लगा कर जिसे अच्छा किया, जो तुम्हारे हाथ के एक मुट्ठी सांवा पर पल कर इतना बड़ा हुआ, जो तुम्हारा पुत्र-सा ही लगता था, वह मृगछौना आज तुम्हारा रास्ता रोके खड़ा है बेटी !

शकुन्तला—बेटा, जो तुम्हें छोड़ कर जा रही है, उसका पीछा तू क्यों कर रहा है ? जब तेरी माँ मर गई थी, मैंने तुझे पाला-पोसा था, अब पिता जी तेरी खोज-खबर लेंगे; इसलिए जा पिता जी के पीछे लग, बेटा !

(रोती हुई चलती है)

कण्व—बेटी, रोओ मत । स्थिर रहो और रास्ता देखो । तुम्हारी बरौनियां ऊपर उठ गई हैं; इसलिए इन आंसुओं के कारण तुम रास्ता ठीक से देख नहीं पाती, जिससे इस ऊबड़-खाबड़ में तेरे पैर लड़खड़ा रहे हैं !

शारंगरव—गुरुदेव, प्रियजन को जलाशय तक ही पहुँचाना चाहिए । देखिए यह सरोवर आ गया ।

अनुसूया—शकुन्तले, तपोवन में ऐसा कोई सहृदय प्राणी नहीं है जो तुम्हारे वियोग से दुःखी न हो । कमल-पत्र की ओट में पड़ी चकई पुकारे जा रही है, लेकिन तो भी वह चकवा बोल नहीं रहा है—अपने मुख में मृणाल रखे किस कातर दृष्टि से वह तुम्हारी ओर देख रहा है ?

शकुन्तला—(सिसकती है)

कण्व—बेटी, चुप हो ! चलते समय तुम्हें एक शिक्षा देना अपना कर्तव्य समझ रहा हूं– जाओ, सुख से अपने पति के घर पहुँचो। वहां गुरुजनों की सेवा में नहीं चूकना, सौतों को भी प्रिय सखि समझना, पति कदाचित् अपमान करे तो भी क्रोध करके उनसे मत झगड़ बैठना, दास दासियों से उदारता का व्यवहार रखना और अपने सौभाग्य पर कभी नहीं गर्व करना । बेटी, यही कुल-कामिनियों का धर्म है।

गौतमी—हां, बेटी, इससे बढ़ कर नारी के लिए कोई दूसरा उपदेश हो नहीं सकता।

कण्व–बेटी, आओ, फिर हम मिल लें।

शकुन्तला—पिता जी, मलय-पर्वत से उखाड़ी गई चन्दन लता की तरह आपकी गोद से दूर होकर मैं किस तरह जी सकूंगी ? आह !

कण्व—अधीर मत हो, बेटी ! पति का अपार स्नेह पाकर, भरे-पूरे घर की गृहिणी बन कर और पूर्व दिशा की तरह सूर्य-सा प्रतापी पुत्र पाकर तुम इस विरह-दुःख को शीघ्र भूल जाओगी बेटी !

शकुन्तला—पिताजी ! प्रणाम, पिताजी !

कण्व—तेरी इच्छा पूरी हो, बेटी !

शकुन्तला—बहन अनुसूये, प्यारी प्रियम्वदे–तुम लोग भी एक बार फिर मिल लो, बहन !

[दोनों मिलती हैं]

अनुसूया—राजा को यदि पहचानने में कठिनाई हो, तो यह अंगूठी दिखा देना !

शकुन्तला—तुम्हारी इस बात से तो मेरा हृदय कांप उठा !

प्रियम्वदा—डरो नहीं सखी, प्रेम में खटका हुआ ही करता है !

शारंगरव—देवि, अब बेला बहुत चढ़ गई—अब शीघ्रता की जाय।

शकुन्तला—पिता जी, भूलिएगा नहीं !

कण्व—(ठण्डी सांस लेकर) पर्णकुटी के द्वार पर जब तक तुम्हारे हाथों से लगाये नीवार में कोयलें आती रहेंगी, तब तक तुम्हें किस तरह भूल सकूंगा, बेटी। अच्छा जाओ— शिवास्ते सन्तु पन्थानः।

अनुवादक—

श्री रामवृक्ष बेनीपुरी

['हवा पर' से]

(२७)

अंगूठा चूसने वाला बालक

अंगूठा चूसने की आदत प्राय: सभी बालकों को होती है। जन्म से लेकर पांच–छः वर्ष तक यह आदत नहीं छूटती। बालकों की इस प्रकृति के कई कारण हो सकते हैं जो, जैसे बालक बढ़ता जाता है, बदलते जाते हैं। इस तरह अंगूठा चूसने की तीन स्थितियां हो सकती हैं।

पहली स्थिति बालक के जन्म से प्रारम्भ होती है। उस समय चूसना उसके लिए आवश्यक और लाभप्रद होता है। बालक को जो चीज भी हाथ लग जाती है, वह उठा कर मुंह में रख लेता है और चूसने लगता है। इससे उसे बड़ा सन्तोष मिलता है। जब बालक और बड़ा हो जाता है और थोड़ा थोड़ा बैठने लगता है तो वह अपने पालने या गाड़ी के किनारों को ही चूसने का प्रयत्न करता है। अपने खिलौनों को भी मुंह में ठूंसने का प्रयास करता है। मतलब यह कि जो चीज भी उसके आसपास होती रहेगी, वह उसे उठा कर मुंह में रखने का प्रयत्न करेगा।

आपको चाहिए कि बालक के पास केवल साफ सुथरी वस्तुएं ही रखें, ताकि गंदगी के कारण उसे कोई बीमारी न लग जाय। उसे वही खिलौने देने चाहियें जो धुल पुंछ कर साफ हो सकें। झुन–झुने को

पालने से इस प्रकार बांधना चाहिए कि वह नीचे जमीन पर न लगे, नहीं तो गंदा हो जायगा और बालक के लिए हानिप्रद होगा।

जिन बालकों को इस उम्र में चूसने का अवसर नहीं मिलता, वे बाद में जाकर अंगूठा चूसने लगते हैं। इसलिए नवजात शिशु को अपनी इस इच्छापूर्ति का पर्याप्त अवसर देना चाहिए। माता को चाहिये कि बालक को दूध पिलाने में काफी समय लगाए, ताकि उसके मुंह, होठों और गालों की खूब कसरत हो जाये। दूध पीने के लिए बालक को थोड़े बहुत हाथ पैर चलाना भी आवश्यक है।

यदि बालक माता का दूध पीता है, तो स्तन को उसके मुंह से थोड़ी दूरी पर रखिये, ताकि उसे मुंह में लेने के लिए बालक को थोड़ा-सा प्रयत्न करना पड़े। और यदि वह शीशी से दूध पीता है, तो उसकी चुसनी का छिद्र छोटा रखना चाहिए इस तरह उसमें से दूध कम निकलेगा और बालक को पीने में जोर लगाना पड़ेगा। पर छेद इतना छोटा भी नहीं होना चाहिये कि उसमें से दूध निकले ही नहीं।

दूध पीते समय बालक को दूध गले से नीचे गटकने का समय देना चाहिए। दूध पिलाने में कोई आधा घण्टा लगाना चाहिए। लेकिन क्षीण और कमजोर बालक इतनी मेहनत नहीं कर सकते। इसलिये उनके लिए ये बातें लाभप्रद नहीं होंगी।

दूध पिलाने के बाद भी बालक कुछ चूसता है, तो कदाचित् उसका पेट नहीं भर पाया होगा। यदि ऐसा है, तो डाक्टर से पूछ कर बजाय चार के तीन घण्टे बाद बालक को दूध पिलाना चाहिए, ताकि वह भूखा न रहे, और बाद में उसे चूसने की इच्छा न हो।

जब बालक थोड़ी थोड़ी खिचड़ी या दाल चाटने लगता है, तब भी उसे चूसने की इच्छा शेष रहती है। इसलिए खाने के बाद या

तो माता को अपना दूध मुंह से लगा देना चाहिये नहीं तो शीशी भी ठीक रहेगी।

छठे या सातवें महीने में जब दांत निकलने लगते हैं, बालक को चबाने और काटने में बड़ा मजा आता है। अपने छोटे छोटे दांतों से आप की उंगली काट कर उसे बड़ी प्रसन्नता होती है। आप तो दर्द के मारे 'सी सी' करने लगती हैं और उसके अबोध मुख पर मुस्कान खिल जाती है। आप तो बड़े प्यार से उसे गोदी में उठा कर चिपका लेती हैं, और वह 'कट' से आप के कंधे में काट लेता है।

पर पहले की तरह अब उसे अंगूठा या खिलौने चूसने में उतना मजा नहीं आता। फिर भी हर वस्तु को पहचानने के लिए वह उसे मुंह में ही ले जाता है। इस उम्र में बालक को दिन में चूसने की उतनी इच्छा नहीं होती, जितनी कि रात में सोते समय या थक जाने पर, अंगूठा मुंह में लेकर लेट जाने की इच्छा होती है।

साल भर के होने से पहले ही कुछ बालक तो अपने आप ही शीशी से दूध पीना छोड़ देते हैं और कटोरी या गिलास से पीने लगते हैं। किन्तु शीशी से दूध पीना कभी जबरदस्ती नहीं छुड़ाना चाहिए। इसका परिणाम यह होता है कि बालक की चूसने की इच्छा शेष रहती है, और फिर वह अंगूठा चूसने लगता है।

जब बालक अपने आप भी शीशी छोड़ कर गिलास से दूध पीने लगता है, तब भी खाने के बाद या सोते समय उसके मुंह से शीशी लगा देनी चाहिए, ताकि जो कुछ थोड़ी बहुत हुड़क शेष रह जाय, वह भी पूर्ण हो जाय।

एक वर्ष के हो जाने पर अधिकतर बालक खाने के छोटे-छोटे मसले हुए टुकड़े खूब चबा चबा कर खाने लगता है। दो वर्ष का

हो जाने पर बालक का ध्यान और बातों की ओर आकर्षित करने का प्रयत्न करना चाहिए, ताकि चूसने की ओर उसकी रुचि न रहे ।

अंगूठा चूसने की दूसरी स्थिति वह है, जब बालक दो वर्ष का हो जाने पर भी इस आदत को नहीं छोड़ता। इस समय वह तो न भूखा रह जाने के कारण ही अंगूठा चूसता है और न इससे उसे कोई लाभ ही होता है।

कभी-कभी जब बालक थक जाता है, या किसी कारण चिढ़ जाता है, या किसी परेशानी की हालत में होता है, तो भी अंगूठा चूसने लगता है ।

बहुत से इसका कारण बालक की बुद्धिमानी, लज्जा या सोते समय थप-थपाये जाने की इच्छा समझते हैं । पर वास्तव में यह बात नहीं है। जब घर का वातावरण राग-द्वेषमय व कलह-पूर्ण हो उठता है, तो बालक सहमा-सहमा सा रहता है; उसे लगता है कि उसकी परवाह करने वाला कोई नहीं है । और जब घर में सुख शांति नहीं रहती, तो वह अकसर अंगूठा चूसने लगता है।

अंगूठा चूसते चूसते बहुत से बालक गुम-सुम और चुप रहने लगते हैं तथा दूसरी और आदतें सीख लेते हैं, जैसे बाल खींचना, हथेली से अपनी आंखें बन्द करना, सिर को रगड़ना या टकराना । ये आदतें अच्छी नहीं होतीं, और यही स्पष्ट करती हैं कि बालक जीवन से विमुख होता जा रहा है ।

जब बालक और बड़ा हो जाता है, और स्कूल जाने लगता है, तो अपनी इन्हीं आदतों के कारण उसका स्वभाव और बच्चों से भिन्न हो जाता है। अंगूठा चूसने से यही मुख्य हानि होती है ।

कहा जाता है कि जो बालक अंगूठा चूसते हैं, उनके जबड़े और अंगूठे की बनावट बुरी हो जाती है, दांत टेढ़े मेढ़े निकल आते हैं,

उंगलियों में छाले हो जाते हैं, और छूत की बीमारी के कीटाणु मुंह में चले जाते हैं। वास्तव में यह सब बातें आम तौर पर केवल अंगूठा चूसने के कारण ही नहीं होतीं, इनके और भी कारण हो सकते हैं।

यह बात भी ठीक नहीं है कि अंगूठा चूसने वाले बालकों के पेट में और बालकों की अपेक्षा अधिक गड़बड़ रहती है। हां, यह हो सकता है कि अंगूठे के नाखून के चारों ओर घाव हो जाएं। इनका इलाज तुरन्त ही होजाना चाहिए।

अंगूठा चूसने की आदत छुड़ाने के लिए बलाक को डांटना, फटकारना या मारना नहीं चाहिए और न ही उसके हाथ को बांधना या उंगलियों पर कोई सख्त या कड़वी चीज लगानी चाहिए। इसके बजाय यह मालूम करने का प्रयत्न करना चाहिए कि बालक अंगूठा चूसता क्यों है।

अधिकतर इसका कारण यह होता है कि बालक समझने लगता है कि आप उसे प्यार नहीं करतीं, और करती भी हैं, तो इस तरह कि बालक समझ नहीं पाता। और नहीं तो आपको अपने कामों और परेशानियों से ही समय न बचता होगा, जो कुछ देर उसके साथ खेल भी सकें।

या फिर एक कारण यह भी हो सकता है कि आपके घर में कलह, लड़ाई-झगड़े, चीख-चिल्लाहट, बहस इत्यादि होते रहते होंगे। जिस घर के लोगों में तना-तनी और नुकता चीनी होती रहती है, उनमें रहने से तबीयत बड़ी घबराती है, और हर समय परेशानी रहती है। ऐसा वातावरण बालक के लिए स्वस्थ नहीं होता।

जिस घर में शांति विराजती है, और बालक समझता है कि यहां उसका कोई सगा हिमायती है, उसी घर में वह प्रसन्न रहता है।

एक कारण यह भी हो सकता है कि बालक को बहुत देर तक अकेला छोड़ दिया जाता है, जबकि वह स्वयं भी किसी खेल में मग्न नहीं होता। इसलिए उसे नये नये काम करने के लिए प्रोत्साहित करना चाहिए, और इस प्रकार के खिलौने या खेल देने चाहिएं, जिन्हें वह अपने हाथ से जोड़-तोड़ सके। पर इतने से ही बस नहीं हो जाती। चाहे बालक स्वयं खेल में लगा हो, फिर भी वह चाहता है कि कोई-न-कोई उसके पास बैठा ही रहे।

इस प्रकार जब बालक कुछ सोचने समझने लगेगा और अन्य कामों में उसका मन लगता जायगा, तो वह आप से आप ही अंगूठा चूसना छोड़ देगा।

अंगूठा चूसने की तीसरी स्थिति वह होती है, जब बालक एक बार इस आदत को छोड़ कर फिर शुरू कर देता है। यदि घर में कोई दुर्घटना हो जाय, या बालक के माता पिता में से एक या दोनों की मृत्यु हो जाय, या घर वाले नवजात शिशु को उससे अधिक प्यार करने लगें, तो बालक फिर एकाकीपन अनुभव करने लगता है, और दुबारा अंगूठा चूसने लगता है, मानो यही उसका सहारा हो।

बालक को इस मनोवृत्ति से बचाने का एक ही उपाय है—प्यार भरे शब्दों और अपने हर कार्य से उसके हृदय में यह विश्वास बैठा दीजिए कि उसे अब भी पहले की तरह ही प्यार किया जाता है, और सब उसे चाहते हैं।

—श्री निर्मला

(२८)

छुट्टी

सामने एक पत्र आया है। इस में बच्चे ने अध्यापक से छुट्टी चाही थी कि उसे ज्वर हो आया है। इस पत्र को लिखे बहुत समय नहीं बीता, कुछ ही पहले की बात है। उस समय बच्चा नहीं जानता था कि वह सदा के लिये छुट्टी ले रहा है, अध्यापक भी नहीं जानता था कि वह ऐसी छुट्टी दे रहा है, जो कभी पूरी न होगी।

फिर भी जो सोचा नहीं जाता, जिसकी कल्पना नहीं की जाती, वही हो जाता है। बच्चा लगभग दो महीने तक ज्वर और ज्वरमुक्ति का कष्ट भोगकर चला गया है। अध्यापक को अपने रीजस्टर से उसका नाम हटा देना पड़ा है।

अध्यापक और कर ही क्या सकता था ? उसे अवकाश नहीं कि प्रतिदिन उस छुट्टी की नई स्वीकृति देता रहे। उसका रजिस्टर छोटा है। उस में इतनी गुन्जायश कहां कि वह ऐसी बड़ी छुट्टी उसमें दर्ज किये रह सके।

और, जान पड़ता है, हमारा यह संसार भी ऐसा ही है। इसमें भी जैसे स्थान की, अवकाश की, अधिकता नहीं। यह अपनी सीमा के भीतर बहुत छोटा है। इसे छोटा कह रहे हैं, इससे इसके कर्ता की निन्दा नहीं होती। उसकी छोटी कृति भी ऐसी है, जिसे मनुष्य

की तराजू तोल नहीं सकती, जिसे मनुष्य के डग माप नहीं सकते। पृथ्वी की माप-तोल के लिये ज्ञान का सहारा लेना पड़ता है, और ज्ञान स्वयं ईश्वर है। तो उस की कृति यह संसार इतना छोटा क्यों है? एक बच्चा तक उसकी सीमा लांघ कर इसके दूसरे पार लांघ जाता है। इसके नद, नदी, समुद्र और वन-पर्वत उसे रोक कर नहीं रख सकते। इसी से आज तक प्रत्येक माता के हृदय में वह बसी हुई है। आज तक प्रत्येक माता का हृदय उसी भार से कांपता रहता है। माता बेचारी नहीं जानती कि उसी की जाति यशोदा की है। उसका आज का गोपाल भी छली है, उसे माता की पीड़ नहीं। वह किसी दूसरी की सन्तान है। इस माता को छलने के लिये ही वह यहां आया था। पर, जान पड़ता है इस गोद को छोड़ कर गोपाल ही छला गया है। उसको माता नहीं। माता का हृदय अध्यापक के रजिस्टर की भांति छोटा नहीं है। उसमें से इतना सब होने पर भी वह अपने गोपाल का नाम हटने नहीं देगी।

इस तरह क्या माता अपने गोपाल को पा लेगी? उसे वह पा नहीं सकती, उस की वाणी सुन नहीं सकती। खेलते हुए अपने आंगन में फिर उसे देख नहीं सकती। उसकी छाती में स्नेह का कितना ही दूध क्यों न उमड़ उठे, क्यों न कितनी ही दुर्बल वेदना से वह दन उठे। पूर्व का सूर्य पश्चिम में क्यों न उगने लगे। तब भी माता का गोपाल लौटने का नहीं। यह संसार ऐसा ही है इसे इसी रूप में सहन करना होगा। पर बेचारी माता करे क्या? संसार जिसे भुलाने के लिये भुला बैठा है, उसे वह भुला नहीं सकती। शोक ही उसका सहारा है। संसार जिसे रखना नहीं चाहता, उसे बचाये रखने के लिए शोक ही अमृत है। उसका अशोक आज इस शोक में आ बैठा है। स्मृति में ही गए हुए का जीवन रक्षित रहता है। मृत्यु की पराजय नहीं है। इसे भी एक अध्यापक की भांति अपने रजिस्टर से उसका नाम हटा देना पड़ता है।

कहा जाता है, इस संसार का रूप विराट् है। पता नहीं, कब से यह चल रहा है। पता नहीं, कब तक यह चला जायेगा। युग युगान्तर और मन्वन्तर इसके एक एक दिन हैं। समुद्र में एक डुबकी ले कर अपनी पृथ्वी के साथ जिस दिन यह ऊपर उछल पड़ता है, वह इस के लिए पुरानी बात नहीं। जब फिर इसके निमज्जन की बारी आ पहुँचेगी वह समय भी इस के लिए दूर न होगा। वह ऐसे होगा, जैसे गर्मी की ऋतु में हमारा दुबारा का स्नान। इस की इस उन्नत क्रीड़ा का पार नहीं मिलता। यह दौड़ा चला जा रहा है। बीच में सांस लेने के लिए इसे रुकना नहीं है, कहीं किसी ओर देखना सुनना नहीं है। शून्य में, सपाट में, जैसे किसी ने बड़े जोर के साथ इसे फेंक दिया हो। इस दौड़ में इसी से वैसे अपना बल इसे नहीं लगाना पड़ता। सब कुछ इसे सहज है, अनायास है। तूफानों के तूफान पर यह सवार होकर जा रहा है। इसके मार्ग में कोई बाधा नहीं है, कोई रोक नहीं है। बीच में जो कुछ पड़ेगा कुचल जायेगा, टूट कर टुकड़े टुकड़े हो जायेगा, चूर-चूर हो कर धूल में मिले बिना नहीं रहेगा।

कांप उठता हूं, इस का यह विराट् रूप सोच कर। "भयेन च प्रव्यथितं मनो मे।" इसे मैं देख नहीं सकता, इसकी कल्पना नहीं कर सकता। मुझे अर्जुन की भांति दिव्य दृष्टि नहीं मिल सकी। मिलती तो उसे झेल नहीं सकता था। अन्धे के हाथ में वह किसी असहनीय दूरबीन का बोझ होती। उसे लेकर मैं करूंगा क्या? जो कुछ मुझे मिला है वही कम नहीं। मैं छोटा हूं, छोटे रूप में ही संसार को मैंने देखा है। इसकी ट्रेन के जिस डिब्बे में मैं हूं, वहां उसकी भयंकर गति का अनुमान नहीं होता। जान पड़ता है, जैसे यह चल ही न रहा हो। इसका यह शांत रूप इसका नहीं है यह नहीं कह सकता। यह इसी का है। इस छोटे रूप में ही यह मुझे उपलब्ध हुआ है। मैं इसको प्यार करता हूं।

प्यार तो करता हूँ, पर असन्तोष भी कम नहीं है। यह इतना छोटा हुआ ही किस लिए? क्यों यह अपने बालक को अपने स्मृति पट से पोंछ देना चाहता है? एक दिन जिसे इसने अपने अंक में लिपटाया था, अपने आंगन में ऊधम मचाने दिया था, अपने दधि-मक्खन को लुटने देकर परिपुष्ट किया था, उसी को यह एक क्षण में भुला देना चाहता है। कहता है, मुझे अवकाश कहां? मुझे दूसरे बहुत से काम करने को हैं। अनन्त अक्षौहिणी सेनाओं से मुझे निबटना है। मेरा कार-बार इस छोटे से वृन्दावन में नहीं चल सकता।

क्या—क्या यह वृन्दावन छोटा सा है? हां, छोटा-सा ही हो। छोटा हो कर भी वह ओछा नहीं है। उसमें स्थान है, उसमें अवकाश है। वह याद रखना जानता है। गये हुए को भुला देना नहीं चाहता। देखते हो, वहां उस यशोदा माता को? उसका गोपाल उसे छोड़ कर चला गया है। कहां गया है, और कितनी दूर गया है? कुछ ठीक नहीं है। ठीक इतना है कि अब वह लौट कर नहीं आवेगा। वह नहीं आवेगा, इसलिए उसकी माता उसे भुला न देगी। उसके छोटे से हृदय में विराट् हाहाकार उठ खड़ा हुआ है। सारी पृथ्वी जैसे उसके लिए सूनी पड़ गई है। सारी पृथ्वी में जैसे उसने गोपाल को ही फैला रक्खा था। उसके बिना वह जी नहीं सकती। परन्तु नहीं, वह जियेगी। उसके भीतर में, उसके बाहर में उसका गोपाल जो है। उसी के लिए वह जियेगी। क्रूर विधाता ने उसकी गोद से उसे विलग कर दिया है। उसके हृदय से वह भी उसे विलग नहीं कर सकेगा। वह चिल्ला रही है,— गोपाल? गोपाल? गोपाल कहां? यह बोलता भी। गला उसका बैठा हुआ है। स्वर उसका साथ नहीं दे पाता। फिर भी वह चिल्लाती है, पुकारती है, गोपाल! गोपाल! पुकारते पुकारते वह बेहोश हो गई है। अपनी बेहोशी में भी वह अपना गोपाल उसे नहीं भूला! उसका चेतन, उसका अचेतन,

सब कुछ गोपालमय है। उसकी इस क्षीण गिरा से पास की गोप-गोपियां तक अपनी पीड़ा भूल बैठी हैं। सब के सब लुटे से खड़े हैं, स्तम्भित हैं, मूक हैं। उस पुकार के बोझ से जैसे हवा का दम घुट गया है। अन्धकार घनीभूत हो उठा है। यमुना अपनी गति खो बैठी है। वह पुकार माता की पुकार है। पृथ्वी-मण्डल को पार कर वह जैसी कम्पित नक्षत्र लोक तक पहुँच गई है।

गोपाल इतना निर्मम है कि इतने पर भी लौट कर नहीं आता। वह इतना बहरा है कि माता की यह गिरा भी उस तक नहीं पहुँच पाती। इस पुकार को अनन्त काल ने अपने हृदय पर धारण कर रक्खा है। कितने ही महाभारतों की रण हुंकार में यह डूबी नहीं है। डूब भी नहीं सकती! यह चिरन्तन हो गई है। चिरन्तन होने के कारण ही पुरानी नहीं पड़ती, सदा-सर्वदा नई बनी रहती है।

माता की आंख के आँसू सूख जायेंगे। कण्ठ का हाहाकार उसका साथ छोड़ देगा; पर अपने भीतर यहां उसने अपने गोपाल को पकड़ रक्खा है, वहां से वह उसे जाने न देगी। उसकी हठ के आगे विधाता को भी झुकना पड़ेगा।

वह गायों के लौटने का स्वर सुनाई पड़ता है। सन्ध्या हो आई है। थनों में दूध भर कर बच्चों की माताएं दौड़ी आ रही हैं। बच्चे मदरसे से लौट कर आ गये हैं। मार्ग में गो धूलि फैल गई है। अंधेरा छाने लगा है। घर घर में संध्या के दीपक जाग उठे। सब कुछ हुआ, वही एक बच्चा लौट कर नहीं आया। घर पर उसकी पोथियों का बस्ता बंधा पड़ा है। मदरसे में किसी ने उसकी सुधि नहीं ली। अध्यापक उसे भूल गया है। भूली नहीं है, बच्चे की बेचारी माता। उसके हृदय-पट में अब भी वह अंकित रहेगा। वहां स्थान है। वहां से उसे छुट्टी नहीं मिल सकती।

मां कह एक कहानी !

(बुद्ध के पुत्र राहुल का अपनी माता यशोधरा से अनुरोध)

(१)

"कहती है मुझसे यह बेटी—
तू मेरी नानी की बेटी !
कह मां; कह लेटी ही लेटी
राजा था या रानी ?
राजा था या रानी—।"
मां कह एक कहानी ।"

(२)

"तू है हठी मान-धन मेरे ।
सुन—उपवन में बड़े सवेरे,
घूम रहे थे पितु पद तेरे,
जहां सुरभि मन भानी"
"जहां सुरभि मन मानी ?
हां मां यही कहानी ।"

(३)

"वर्ण-वर्ण के फूल खिले थे ।
झलमल कर हिम-बिन्दु मिले थे,
हलके झोंके हिले मिले थे
लहराता था पानी ।"
"लहराता था पानी ।"
हां हां यही कहानी ।"

(४)

"गाते थे खग कल-कल स्वर से,
सहसा एक हंस ऊपर से
गिरा, विद्ध होकर खर शर से
हुई पक्ष की हानि ।"
"हुई पक्ष की हानि ?
करुणा भरी कहानी !"

(५)

चौंक उन्होंने उसे उठाया
नया जन्म सा उसने पाया।
इतने में आखेटक आया
लक्ष्य-सिद्ध का मानी।"
"लक्ष्य-सिद्ध का मानी ?
कोमल कठिन कहानी।"

(६)

"हुआ विवाद सदय, निर्दय में
उभय आग्रही थे स्व विषय में
गई बात तब न्यायालय में
सुनी सभी ने जानी।"
सुनी सभी ने जानी ?
व्यापक हुई कहानी।"

(७)

"राहुल ! तू निर्णय कर इसका
न्याय पक्ष लेता है किसका ?
कहदे निर्भय, जय हो जिसका
सुन लूं तेरी बानी।"
—"मां मेरी क्या बानी ?
मैं सुन रहा कहानी।

(८)

कोई निरपराध को मारे
तो क्यों अन्य उसे न उबारे
रक्षक पर भक्षक को वारे
न्याय दया का दानी।"
—"न्याय दया का दानी ?
तूने गुनी कहानी।"

—श्री मैथलीशरण गुप्त

('यशोधरा' से)

प्रताप

दिन भर के विश्रान्त विहग-कुल नीड़ से
निकल निकल कर लगे डाल पर बैठने।
पश्चिम निधि में दिनकर होते अस्त थे।
विपुल शैल-माला अर्बुदगिरि की बनी
शान्त हो रही थी। जीवन के शेष में
कार्य योग रत मानव को जैसी सदा
मिलती है शुभ शान्ति। भली कैसी छटा
प्रकृति करों से निर्मित कानन देश की।
आर्य जाति के इतिहासों के लेख-सी
जल-स्रोत-सी बनी चित्र रेखावली
शैल शिखाओं पर है सुन्दर दीखती।
करि-कर-सम कर बीच लिए करवाल है
कौन पुरुष बैठा वह तट पर स्रोत के
दोनों आँखें उठ-उठ कर बतला रहीं
'जीवन-मरण' समस्या उनमें है भरी
यद्यपि है वह वीर श्रान्त तन भी अभी
हृदय थका है नहीं, विपुल बल वर्ग है,

क्यों कि कर्म-फल-लाभ एक बल है स्वयं।
करुणा-मिश्रित वीरभाव उस बदन पर
अनुपम महिमा-मण्डित शोभित हो रहा,
जन्म भूमि की ओर महा करुणा-भरी
प्रबल शत्रु प्रति कालानल के कोप-सी
दोनों आंखें, तिस पर भी गम्भीरता
हर्ष भरा है अपने ही कर्तव्य का
आजीवन जिसको वह करता आ रहा।
कहो कौन है ? आर्य-जाति के तेज सा
देश-भक्त, जननी का सच्चा पुत्र है !
तुम अपने प्रताप को विस्मृत हो गए
अरे ! कृतघ्न बनो मत उसको भूल के
यह महत्वमय नाम स्मरण करते रहो।

× × ×

—श्री जय शंकर 'प्रसाद'

हल्दी घाटी का युद्ध

(१)

फिर महासमर छिड़ गया तुरत
लोहू-लोहित हथियारों से।
फिर होने लगे प्रहार वार
बरछे - भाले - तलवारों से॥

(२)

हाथी से हाथी जूझ पड़े,
भिड़ गए सवार सवारों से।
घोड़ों पर घोड़े टूट पड़े,
तलवार लड़ी तलवारों से॥

(३)

हय-रुण्ड गिरे, गज-मुण्ड गिरे,
कट-कट अवनी पर शुण्ड गिरे।
लड़ते - लड़ते अरि-झुण्ड गिरे,
भू पर हय विकल वितुण्ड गिरे॥

(४)

चिंघाड़ भगा भय से हाथी,
लेकर अंकुश पिलवान गिरा।
ले झटका लग गया, फटी झालर,
हौदा गिर गया, निशान गिरा॥

(५)

धड़ कहीं पड़ा, सिर कहीं पड़ा,
कुछ भी उनकी पहचान नहीं।
शोणित का ऐसा वेग बढ़ा,
मुरदे बह गए निशान नहीं॥

(६)

मेवाड़-केसरी देख रहा,
केवल रण का न तमाशा था।
वह दौड़-दौड़ करता था रण
वह मान-रक्त का प्यासा था॥

(७)

चढ़ चेतक पर तलवार उठा,
रखता था भूतल-पानी को।
राणा प्रताप सिर काट-काट
करता था सफल जवानी को॥

(८)

भाला कहता था मान कहां,
घोड़ा कहता था मान कहां ?
राणा की लोहित आंखों से,
रव निकल रहा था मान कहां ॥

(९)

तब तक प्रताप ने देख लिया,
लड़ रहा मान था हाथी पर ।
अकबर का चंचल साभिमान,
उड़ता निशान था हाथी पर ॥

(१०)

हय-नस-नस में बिजली दौड़ी,
राणा का घोड़ा लहर उठा ।
शत शत बिजली की आग लिए,
वह प्रलय-मेघ-सा घहर उठा ॥

(११)

तन कर भाला भी बोल उठा,
राणा ! मुझ को विश्राम न दे ।
इस देश द्रोहि का हृदय गोभ,
तू मुझे तनिक आराम न दे ॥

(१२)

रंचक राणा ने देर न की,
घोड़ा चढ़ आया हाथी पर ।
वैरी-दल का सिर काट-काट,
राणा चढ़ आया हाथी पर ॥

—श्री श्यामनारायण पाण्डेय

बापू उत्तम और महान् !

१. ऊँचे पर्वत, गहरे सागर देखके हैं हैरान—

उड़ सकता है कितना ऊँचा

जा सकता है कितना गहरा

धुन का पक्का, बात का सच्चा, इक कमजोर इन्सान !

तन का था कमजोर मगर वह मनका बलवान !

उसकी ऊँची शान जगत में

उसकी ऊँची शान !

उत्तम और महान्, बापू, उत्तम और महान् !

---

२. तूफानों में जिसके बल से हर मुश्किल आसान

सबको साहस देने वाला ।

देश की नय्या खेने वाला ।

हाथ में ले पतवार अगर वह, काँप उठे तूफान !

सूर वीर वह जिसने मारे बड़े बड़े मैदान !

उसकी ऊँची शान.........

---

३. देश-पिता ने कटती-मरती जब देखी संतान—

दर्द-भरी आवाज उठाई

गुमराहों को राह दिखाई !
इस पर भी जब अन्त में देखा खुद अपना अपमान,
अपने एक बेटे की गोली खा कर दे दी जान !
उसकी ऊँची शान.........

———

४. धरती डोली, अम्बर डोला, देखके यह बलिदान—
'अली, हुसैन, हसन के पथ पर,
ईसा और लिंकन के पथ पर
जिस पथ पर सुकरात ने चल कर रक्खी अपनी आन,
दिया उसी पथ पर बापू ने देश को जीवन-दान !
उसकी ऊँची शान.........

———

—'अर्श' मलसियानी

पुष्प की अभिलाषा

चाह नहीं, मैं सुरबाला के गहनों में गूँथा जाऊँ ।
चाह नहीं, प्रेमी-माला में बिंध प्यारी को ललचाऊँ ॥
चाह नहीं, सम्राटों के शव पर हे हरि, डाला जाऊँ ।
चाह नहीं, देवों के शिर पर चढ़ूँ भाग्य पर इठलाऊँ ॥
मुझे तोड़ लेना बनमाली ! उस पथ तुम देना फेंक,
मातृभूमि पर शीश चढ़ाने, जिस पथ जावें वीर अनेक ॥

—'भारतीय आत्मा'

देश प्रेम

एक समय स्वाधीन देश को
समझ शत्रु-भय-रहित सुरक्षित,
लोक स्वर्ग-सुख भोग रहे थे
शान्ति सहित, निर्विघ्न, अशङ्कित ।१।

यह सुख देख द्वेष-वश अथवा
धन-लिप्सा-वश बल संचय कर
एक शत्रु चतुरंग चमू ले
औचक आ पहुँचा सीमा पर । २ ।

देशाधिप ने तुमुल युद्ध कर
रोका बहु संख्यक ले सैनिक
पर अरि की दुर्जेय अनी से
हार गया नृप, नहीं सका टिक । ३ ।

विद्युत्-वेगवन्त वैरी ने
पाकर बाधा-रहित सुअवसर
कितने ही पुर, नगर, ग्राम, घर,
धान्यागार लिए अधिकृत कर । ४ ।

पहुँचा ही सत्वर स्वदेश में
यह घोषणा नृपति ने घर-घर
अपने देश, माल, धन, की जन की
रक्षा करे प्रजा सब मिल कर। ५।

मैं नितान्त असमर्थ हुआ हूँ
कोई मुझ पर रहे न निर्भर
अपनी यह असहाय अवस्था
चकित हो गए लोक श्रवण कर। ६।

जैसे थे वे सुखाभिलाषी
वैसे ही थे सावधान नित
वे थे नीति-धर्म के रक्षक
जगज्जयी पुरुषों के वंशज। ७।
वे न जानते थे भूतल पर
जीवित रहना पराधीन बन
न्याय और स्वातन्त्र्य जगत में
उनके थे दो ही जीवन-धन। ८।

सुन नृप की घोषणा, शत्रु की
प्रबल शक्ति का पाकर परिचय
किया उन्होंने शीघ्र शत्रु को
उचित दण्ड देने का निश्चय। ९।

जय के दृढ़ विश्वास-युक्त थे
दीप्तिमान जिनके मुख-मंडल
पर्वत को भी खण्ड-खण्ड कर
रजकण कर देने को चंचल,

फड़क रहे थे अति प्रचंड भुज-
दण्ड शत्रु-मर्दन को विह्वल
ग्राम-ग्राम से निकल निकल कर
ऐसे युवक चले दल के दल।

जिनकी नस-नस में विद्युत् थी
आँखों में था क्रोध प्रज्वलित
छाती में उत्साह भरा था
वाणी में था प्राण प्रवाहित।
मातृ-भूमि के लिए हृदय में
जिनके भरी शक्ति थी अविरल
ग्राम-ग्राम से निकल निकल कर
ऐसे युवक चले दल के दल॥

माँ ने कहा—दूध की मेरे
लज्जा रखना रण में हे सुत!
स्त्री ने कहा—लौटना घर को
आर्यपुत्र! तुम विजय-श्री-युत
इन वचनों से गूंज रहे थे
जिनके श्रवण और अन्तस्तल
ग्राम-ग्राम से निकल-निकल कर
ऐसे युवक चले दल के दल॥

एक भाव से प्रेरित होकर,
एक लक्ष्य पर दृष्टि लगाकर
एक ध्यान में जागरूक बन
भेद-भाव को दूर भगा कर

हुए एक झण्डे के नीचे
खड़े समस्त युवक योद्धा-गण
टूट पड़े अनिवार्य वेग से
पंचानन की भान्ति मृगों पर ॥

किया शत्रु को नष्ट उन्होंने
जैसे घन को प्रबल प्रभंजन
जैसे तप को प्रखर दिवाकर
जैसे वन को विकट हुताशन
शक्ति, युक्ति, साधन तत्परता
साहस, धैर्य और दृढ़ निश्चय
जिनमें हों, इस जग में उनके
विजयी होने में क्या संशय !

श्री० रामनरेश त्रिपाठी

जलियांवाले बाग में बसन्त

यहां कोकिला नहीं, काक हैं शोर मचाते।
काले-काले कीट, भ्रमर का भ्रम उपजाते॥
कलियां भी अधखिलीं, मिलीं हैं कन्टक-कुल से।
वे पौधे, वे पुष्प, शुष्क हैं अथवा झुलसे॥

परिमल हीन पराग दाग़ सा बना पड़ा है।
हा! यह प्यारा बाग खून से सना पड़ा है॥
आओ प्रिय ऋतुराज! किन्तु से धीरे से आना।
यह है शोक-स्थान यहां मत शोर मचाना॥

लाना संग में पुष्प, न हों वे अधिक सजीले।
हो सुगन्ध भी मन्द, ओस से कुछ-कुछ गीले॥
किन्तु न तुम उपहार-भाव आकर दिखलाना।
स्मृति में पूजा-हेतु यहां थोड़े बिखराना॥

कोमल बालक मेरे यहां गोली खा-खा कर।
कलियां उनके लिए गिराना थोड़ी लाकर॥
आशाओं से भरे हृदय भी छिन्न हुए हैं।
अपने प्रिय परिवार-देश से भिन्न हुए हैं॥

कुछ कलियां अधखिलीं यहां इस लिए चढ़ाना ।
करके उनकी याद अश्रु की ओस बहाना ॥
तड़प-तड़प कर वृद्ध मरे हैं गोली खाकर ।
शुष्क पुष्प कुछ वहां गिरा देना तुम जाकर ॥

सुभद्रा कुमारी चौहान

जल-समाधि

(१)

अति कृतज्ञ हूँगी मैं तेरी
ऐसा चित्र बना दे तू।
दुखित हृदय के भाव हमारे
उस पर सब दिखला दे तू।
प्रभु की निर्दयता, जीवों की
कातरता दरसा दे तू।
मृत्यु समय के गौरव को भी
भली भान्ति झलका दे तू॥

(२)

भाव न बतलाए जाते हैं
शब्द न ऐसे पाती हूँ।
इसीलिए, हे चतुर चितेरे
तुझको विनय सुनाती हूं॥
देख सम्हल कर, खूब सम्हल कर
ऐसा चित्र बनाना तू।
सुन्दर इठलाती सरिता पर
मन्दिर-घाट दिखाना तू॥

(३)

वहीं पास के पुल से बढ़ कर
धारा तेज़ बहाना तू।
चट्टानों से टकरा कर फिर
भारी भवँर घुमाना तू।
उसी भवँर के निकट किनारे
युवक खेलते हों दो चार।
हंसते और हंसाते हों वे
निज चंचलता के अनुसार॥

(४)

किन्तु हाय धारा में पड़ कर
तीन युवक बह जाते हों।
थके हुए फिर किसी शिला से
टकरा कर रुक जाते हों।
उनके मुख पर बच जाने का
कुछ सन्तोष दिखा देना।
किन्तु साथ ही घबराहट में
उत्कण्ठा झलका देना॥

(५)

गहरी धारा में नीचे जब
एक दृश्य यह दिखलाना।
रो रो उसे बहा मत देना
देख, सम्हल कर रुक जाना।
धारा में सुन्दर बलिष्ठ-तन
युवक एक दिखलाता हो।
क्रूर शिलाओं में पड़ कर जो
तड़प तड़प रह जाता हो।

(६)

तो भी मंद हँसी की रेखा
उसके मुँह पर दिखलाना?
नहीं मौत से डरता था वह
हंस सकता था, बतलाना।
किन्तु, साथ ही धीरे धीरे
बेसुध होता जाता हो।
क्षण-क्षण में सर्वस्व दीन का
मानो लुटता जाता हो॥

(७)

ऊपर आसमान में धुँधला
कुछ प्रकाश दिखला देना।
एक ओर श्यामा तरुणी का
सुन्दर रूप बता देना।
बिखरे बाल विरस वदना कुछ
व्याकुल सी दिखलाती हो।
गोदी में दुधमुँही बालिका
लिए वहां पर आती हो॥

(८)

आशा-भरी दृष्टि से प्रभु की-
ओर देखती जाती हो।
दुखिया का सर्वस्व न लुटने-
पावे, यही मनाती हो॥
इसके बाद चितेरे जो तू
चाहे, वही बना देना।
अपनी ही इच्छा से अन्तिम
दृश्य वहां दिखला देना।
चाहे तो प्रभु के चेहरे पर
करुणा-भाव दिखाना तू।
अथवा मंद हंसी की रेखा
या निर्लज्ज बनाना तू॥

—सुभद्रा कुमारी चौहान

जीवन-वसन्त

मैंने वसन्त के पुष्पों से
पूछा-'तुम कितने सुन्दर हो ?'
वे बोले-हां, हमने पाया
है विधि से सुन्दरता का वर ।
हम उपवन में प्रतिदिन खिलते
प्रतिक्षण हँसते ही रहते हैं ।
हम झड़ जाते, मुरझा जाते,
पर, यह न किसी से कहते हैं !'

× × ×

मैंने वसन्त के वृक्षों से
पूछा-'तुम कितने हो शीतल !'
वे बोले-हां हममें आये
हैं नूतन ये पल्लव कोमल ।
इस मिट्टी का लेकर देते
हम फूल और फल मधुर पके,
यह सघन हमारी छाया है,
रुक जाते राही जहां थके ।'

× × ×

मैंने वसन्त मलयानिल से
पूछा-'तुम कितने हो निर्मल !'
वह बोला-'मैं वितरण करता
जग-जग में कुसुमों का परिमल
मैं कुंज कुंज का सौरभ ले,
घर-घर में सबको दे आता,
सुख-सुषमा-शीतलता देकर,
जग की दुख-ज्वाला ले आता'

× × ×

मैंने वसन्त के विहगों से
पूछा-'तुम कितने हो चंचल !'
वे बोले-'हम गाते रहते
आनन्द-गीत, प्रतिक्षण, प्रतिपल ।
वन-उपवन में भरते रहते
अपना कल गान, विकल कूजन ।
हममें नवजीवन का स्वर है,
हममें है भरा नवल यौवन !'

× × ×

मैंने वसन्त-वन को देखा,
फिर एक बार देखा भू को,
मैंने मलयानिल को देखा,
फिर भू की इस जलती लू को !

उस जग में फूलों की दुनिया,
नव-क्रीड़ा कौतक करती थी;
इस भू में मनुजों की टोली
रो-रो कर निशि-दिन मरती थी।

× × ×

मानव, यह दिग्विजयी मानव,
पद-दलित आज शोषित, पीड़ित,
जग में अशेष चीत्कार, दैन्य,
मानव के शोणित से जीवित।
कंकाल-प्रेत- सा भयकारी,
यह गलता है, जैसे दानव,
व्याकुल श्मशान के रोदन में
यह होता है सुख का उत्सव।

× × ×

सरिता बहती ही रहती है;
कोकिल-गण गाते ही रहते।
उन्मद वसन्त के वैभव में
आनन्द मनाते ही रहते
हँसते ही रहते फूल सदा,
पल्लव-दल हिलते ही रहते,
ऊषा मुसकाती ही रहती,
नीरज-दल खिलते ही रहते।

× × ×

फूलों की दुनिया भी पल-भर,
मधु ऋतु का वैभव भी नश्वर,
फिर भी न जगत में जीवन का,
मधु का प्रवाह रुकता क्षण भर।
मैंने 'उस दुनिया' को देखा,
वन-वन में छाया था बसन्त,
फिर, एक बार देखा भू को,
हा-हा-रव मुखरित था दिगन्त !

× × ×

आरसी प्रसाद सिंह

("जीवन और यौवन" से)

पीपल

कानन का यह तरुवर पीपल
युग-युग से जग में अचल, अटल
ऊपर विस्तृत नभ नील नील, नीचे वसुधा में नदी, झील
जामुन, तमाल, इमली, करील
जल से ऊपर उठता मृणाल, फुनगी पर खिलता कमल लाल
तिर-तिर करते क्रीड़ा मराल
ऊँचे टीले से वसुधा पर झरती है निर्झरिणी झर-झर
हो जाती बून्द-बून्द झर झर
निर्झर के पास खड़ा पीपल सुनता रहता कल कल-छल छल
पल्लव हिलते ढल पल-ढल पल
पीपल के पत्ते गोल-गोल
कुछ कहते रहते डोल-डोल
जब-जब आता पंछी तरु पर, जब-जब जाता पंछी उड़कर
जब-जब खाता फल चुन-चुन कर
पड़ती जब पावस की फुहार, बजते जब पंछी के सितार

बहने लगती शीतल बयार
तब-तब कोमल पल्लव हिल-डुल गाते सर्सर, मर्मर मंजुल
लख-लख, सुन-सुन विह्वल बुल बुल
बुल बुल गाती रहती चह-चह सरिता गाती रहती बह-बह
पत्ते हिलते रहते रह - रह
जितने भी इसमें हैं कोटर
सब पंछी, गिलहरियों के घर
सन्ध्या को जब दिन जाता ढल, सूरज चलते हैं अस्ताचल
कर में समेट किरणें उज्वल
हो जाता है सुनसान लोक चल पड़ते घरको चील, कोक
अँधियाली सन्ध्या को विलोक
भर जाता है कोटर-कोटर बस जाते हैं पत्तों के घर
घर - घर में आती नीन्द उतर
निद्रा में ही होता प्रभात, कट जाती है इस तरह रात
फिर वही बात रे वही बात

\+ ÷ +

इस वसुधा का वह वन्य प्रान्त
है दूर, अलग, एकान्त, शान्त
है खड़े जहां पर शाल, बांस, चौपाये चरते नरम घास
निर्झर, सरिता के आस-पास
रजनी भर रो-रो कर चकोर कर देता है रे रोज़ भोर

नाचा करते हैं जहां मोर
है जहां बल्लरी का बन्धन, बन्धन क्या वह तो आलिंगन
आलिंगन भी चिर-आलिंगन
उन्मनी पथिकों की जहां श्याम निद्रा लग जाती अनायास
है वहीं सदा इसका निवास

—श्री गोपाल शरण सिंह नेपाली

['उमङ्ग से']

यह कोमल लघु फूल !

(१)

कितनी बार खिला मुरझाया,
मधुपों को मकरन्द चखाया,
किन्तु पा सकता जीवन में,
केवल उर का शूल,
यह कोमल लघु फूल !

(२)

कितनी बार गिरा भूतल पर,
कितनी चोट सही मृदु दल पर,
किन्तु विटप पर फिर हंसता है,
सभी दुखों को भूल,
यह कोमल लघु फूल !

(३)

रस समूह सञ्चित कर उर में,
छिपा विपिन के अन्तःपुर में,
देता है सौरभ समीर को,
ले बदले में धूल,
यह कोमल लघु फूल !

श्री गोपाल शरण सिंह

ओ समीर, प्रातः समीर !

ओ समीर, प्रातः समीर !
मेरे पल्लव सोते हैं,
टूटे न शान्त स्वप्नों का तार !
या तो धीरे से आओ,
या रहो दूर, देखो उस पार ॥
सरल-सुमन शिशुओं ने तेरी,
आहट से दीं आँखें खोल।
यह सौन्दर्य-सुधा छलका कर,
घटा दिया क्यों इसका मोल ?
ओ समीर, निष्ठुर समीर !

* * *

कलियों को मत छुओ,
बालिकाएं हैं, सरला है अनजान।
गाना मत उनके समीप,
उनमत्त अरे, यौवन के गान ॥
असम तुम्हारा है प्रवाह,
ध्वनि-पद से करते व्योम-विहार।
या तो धीरे से आओ,

या रहो दूर देखो उस पार

ओ समीर, मादक समीर !

❀ ❀ ❀

किसका शिशुपन चुरा चुराकर,

भरते हो ओलों में आज ?

किस की लाली छीन कर रहे

उषा-प्रेयसी का यह साज ?

अरे, एक झोके में ही क्यों,

उड़ा दिए सब तारक फूल ?

मेरे स्वप्नों में क्यों भर दी,

मेरे जागृतपन की धूल ?

ओ समीर, पागल समीर !

रामकुमार वर्मा

बीत चली सन्ध्या की वेला !

बीत चली सन्ध्या की वेला !
धुंधली प्रतिपल पड़ने वाली
एक रेख में सिमटी लाली
कहती है समाप्त होता है सतरँगे बादल का मेला !
बीत चली सन्ध्या की वेला !

× × ×

नभ में कुछ द्युतिहीन सितारे
मांग रहे हैं हाथ पसारे-
'रजनी आए, रवि किरणों से हमने है दिन भर दुख झेला !'
बीत चली सन्ध्या की वेला !

× × ×

अंतरिक्ष में आकुल-आतुर,
कभी इधर उड़, कभी उधर उड़
पंथ नीड़ को खोज रहा है पिछड़ा पंछी एक अकेला !
बीत चली सन्ध्या की वेला !

बच्चन

कलरव

बांसों की झुरमुट—
सन्ध्या का झुटपुट—
हैं चहक रही चिड़ियाँ—
टी-वी-टी-टुट्-टुट्
वे डाल डाल कर उर अपने
हैं बरसा रहीं मधुर सपने
श्रम-जर्जर विधुर चराचर पर
गा गीत स्नेह-वेदना सने ।

ये नाथ रहे निज घर का मन
कुछ श्रमजीवी घर डगमग डग
भारी है जीवन ! भारी पग ! !
आः, गा-गा शत-शत सहृदय खग,
सन्ध्या बिखरा निज स्वर्ण सुभग
औ' गन्ध-पवन झल मन्द व्यजन
भर रहे नया इन में जीवन,
ढीली हैं जिनकी रग-रग !

यह लौकिक औ' प्राकृतिक कला,
यह काव्य अलौकिक सदा चला
आ रहा,--सृष्टि के साथ पला !
गा सके खगों सा मेरा कवि
विश्री जग की सन्ध्या की छवि !
गा सके खगों सा मेरा कवि
फिर हो प्रभात,-- फिर आवे रवि !

सुभित्रानन्दन 'पन्त'

झरना

मधुर है स्रोत, मधुर है लहरी
न है उत्पात, छटा है छहरी

मनोहर झरना,

कठिन गिरि कहां विदारित करना।

बात कुछ छिपी हुई है गहरी।
मधुर है स्रोत मधुर है लहरी॥

(२)

कल्पनातीत काल की घटना।
हृदय को लगी अचानक रटना॥

देख कर झरना,

प्रथम वर्षा से इसका भरना।

स्मरण हो रहा शैल का कटना।
कल्पनातीत काल की घटना॥

(३)

कर गई प्लावित तन मन सारा।
एक दिन तव अपाङ्ग की धारा॥

हृदय से झरना—

बह चला, जैसे दृग जल ढरना ।
प्रणय वन्या ने किया पसारा ।
कर गई प्लावित तन मन सारा ।।

(४)

प्रेम की पवित्र परछांई में ।
लालसा हरित विटपि झांई में ॥
बह चला झरना,
ताप मय जीवन शीतल करना ।
सत्य यह तेरी सुघराई में ।
प्रेम की पवित्र परछांई में ॥

जय शंकर प्रसाद

बर्फ की नन्ही प्यारी सुषमा !

बर्फ की नन्ही प्यारी सुषमा !
उमड़ उमड़ नभ से आती है—

पवनों के मृदु-मृदु कंधों पर,
नाच-नाच कर, झूम-झूम कर,
फुदक-फुदक कर, घूम-घूम कर,
ठहर-ठहर कर, सिहर-सिहर कर,
धरती पर जमती जाती है !

तरुवर की ऊँची, चोटी
और टहनी के जर्जर तन पर,
पतझर की घातक नजरों से
छूटी पत्तियों पर छाती है—

छा जाती है !

घाटी की मुखरित गोदी में
सरिता के ठिठुरे कूलों पर,
खेतों की सहमी काई पर
उजड़े उपवन धूलों की पर
दीवारों पर, मीनारों पर,

मन्दिर; मस्जिद, गुरुद्वारों पर,
महलों के गर्वीले मस्तक पर,—
कुटिया की क्षीण कमर पर—
पर्वत की कर्कश काया पर,
नित-नूतन स्वागत पाती है!

बर्फ की नन्ही प्यारी सुषमा,
उमड़ उमड़ नभ से आती है।

—पुष्प

है अपना हिन्दुस्थान कहाँ

जगमग नगरों से दूर-दूर   हैं जहां न महल खड़े ऊंचे,
टूटे-फूटे कुछ कच्चे घर   दिखते खेतों में चलते हल,
पुरई-पालों, खपरैलों में   रहिमा रमुवा के नावों में,
है अपना हिन्दुस्थान कहां ?   वह बसा हमारे गावों में !

नित फटे चीथड़े पहने जो   हड्डी—पसली के पुतलों में;
असली भारत है दिखलाता   नर—कंकालों की शकलों में,
पैरों की फटी बिवाई में   अन्तस के गहरे घावों में,
है अपना हिन्दुस्थान कहां ?   वह बसा हमारे गावों में !

सोने-चांदी का नाम न लो   पीतल-कांसे के कड़े-छड़े
मिल जायँ बहूरानी को तो   समझो उनके सौभाग्य बड़े
रांगे की काली बिछियों में   पति के सुहाग के भावों में
है अपना हिन्दुस्थान वहाँ   वह बसा हमारे गावों में !

खुरपी ले-ले छीलने घास   भरते कोछों की कोरों में,
लकड़ी का बोझ लदा सिर पर   जो कल पूँज की डोरों में,

उनका अर्जन व्यापार यही क्या करें गरीब उपायों में?'
है अपना हिन्दुस्थान कहाँ वह बसा हमारे गावों में !

हड्डी-हड्डी पसली-पसली निकली है जिनकी एक-एक,
पढ लो मानव, किस दानव ने ये नर-हत्या के लिखे लेख !'
पी गया रक्त, खा गया मांस, रे कौन स्वार्थ के दावों में ?
है अपना हिन्दुस्थान कहाँ ? वह बसा हमारे गावों में !

सोहनलाल द्विवेदी

[भैरवी से]

विशाल भारत

(१)

उठ, ओ वृहद्, विराट् विशाल !
उठ अमिताभ, लाभ कर निज पद,
लुटा, लक्ष्य पर लाल ।
जीवन के अरुणोदय में ही होमामोद पवित्र—
फैल गया पृथ्वी में तेरा, बजे त्रिदिव - वादित्र ।
दो देशों के सन्धि-पत्र में ओ, चिर चारु चरित्र,
साक्षी होते थे तेरे ही इंद्र, वरुण, वसु मित्र;
गूँजे तेरे ही मन्त्रों से जल, थल, नभ, पाताल ।
उठ, ओ वृहद् विराट विशाल!

(२)

विश्व-विजय के स्वप्नों में थे, ग्रीस रोम, ईरान,
और हो रहे थे बेचारे बस बस कर वीरान ।
तूने ही मैत्री-करुणा का गाया था तब गान,
पाया था सम्पूर्ण अवनि में अग्रदूत का मान;

एक बार तू उस अतीत की ओर दृष्टि तो डाल !
उठ, ओ बृहद्, विराट, विशाल !

(३)

स्वार्थ आज भी करा रहा है विषम विश्व-विद्रोह,
सभ्य वेश में दस्यु दुराशय, बजा रहे हैं लोह।
नहीं धर्म पर, धन-धरती पर, अड़ा लोभमय मोह,
वह अशोक-साम्राज्य निदर्शन, निष्फल था क्या! ओह !,
तू ही सफल करेगा उसको, आ, अपना व्रत पाल;
उठ, ओ बृहद्, विराट, विशाल

(४)

देख रहे हैं सागर तेरे, जल यानों की बाट,
स्वागतार्थ आतुर, उत्सुक हैं, उनके सारे घाट।
मेटें तेरे बुद्धवीर फिर, विषम युद्ध-विभाट,—
लूट पाट की, मारकाट की, नर शोणित की चाट॥
हृदय हीन, हिंसक बदलेंगे, सहज न अपनी चाल।
उठ, ओ बृहद्, विराट, विशाल।

(५)

विश्व मिलन का भार उठा कर, बैठ न यों तू हार,
"चित्ते दिया, समर-निष्ठुरता" व्यर्थ और विस्तार।

धर्म राम का, कर्म कृष्ण का, प्रेम बुद्ध का धार—
और अहिंसा महावीर की सर्व समन्वय सार
कौन सम्भाल सकेगा तुझको स्वयं स्वरूप सम्भाल.
उठ, ओ वृहद् विराट, विशाल।

(६)

तेरे ही स्वर का साधक है, भव-भविष्य-सन्देश,
किन्तु कण्ठ में पाश पड़ा है तेरे, मेरे देश।
यह कैसा अपमान और हा! है यह कैसा क्लेश।
आने दे तू आत्म-स्मृति का एक उष्ण आवेश।
शीतल पाकर ही चन्दन पर लिपटे हैं बहु व्याल।
उठ, ओ वृहद्, विराट, विशाल।

स्वतन्त्रता की ओर

आज यहां का बच्चा-बच्चा पिटने का अभिमानी है
देश दंग देख-देख कर, यह कैसी कुर्बानी है
न्योछावर आजादी पर युवकों की मस्त जवानी है
बूढ़ों की भी जीर्ण जरा अब पगली है, दीवानी

अब स्वतन्त्र होने की भारत के कण-कण ने ठानी है
आज कही जाती दुनिया में घर-घर यही कहानी
अब स्वतन्त्रता की कीमत इस भारत ने पहचानी है

क्या छोटा सा गांव और क्या वह दिल्ली रजधानी है
उस बूढ़े गांधी की बातें आज सभी ने मानी है,
गान्धी के दृढ़ तप की कीमत जनता ने पहचानी है,
कुर्बानी के लिए खड़े सब क्या मूरख, क्या ज्ञानी

गांधी की यह आंधी चलती चाल बड़ी तूफानी
आज कही जाती दुनिया में घर-घर यही कहानी है
अब स्वतन्त्रता की कीमत इस भारत ने पहचानी है

क्या कुटिया की बुढ़ियानानी यौवन की अभिमानी क्या,
क्या गोदी की नन्हीं बच्ची, महलों की महारानी क्या
घर के भीतर रहने वाली ठाकुर की ठकुरानी क्या
कोमलता में पलने वाली घर की कोमल रानी क्या

जाती हैं सब बलि वेदी पर माँ को भेंट चढ़ानी है
आज कही जाती दुनिया में घर-घर यही कहानी
अब स्वतन्त्रता की कीमत इस भारत ने पहिचानी

अब गोली के बाद रोकने सबने छाती तानी है
बालों की मूछों पर अंकित रेखाएं मर्दानी हैं
क्या इनके इन बलिदानों का इस दुनिया में सानी है
होड़ देख कर जब इनकी, कुर्बानी भी पानी-पानी है

इस मरने की आज शान पर स्वयं स्वर्ग अभिमानी है
आज कही जाती दुनिया में घर-घर यही कहानी है
अब स्वतन्त्रता की कीमत इस भारत ने पहचानी है

गोपालशरण सिंह ("उमंग" से)

आज घी के दीप सजनी !

आज घी के दीप सजनी,
जल रहे घर-घर नगर में
हर्ष का उल्लास उमड़ा
बह रहा बन बन डगर में।
देव मन्दिर मस्जिदें सब
आज देखो जगमगातीं।
धर्म के अब ढोंगियों की
डोंगियां हैं डगमगातीं।
एक ही है मार्ग सबका,
एक ही है उद्गार सबका।
भिन्न क्यों हो तब बताओ
धर्म का व्यापार सबका।
है दिवाली आज हँसती
ईद भी तो कल हंसेगी।
एक होगी कौम दोनों,
एक ही दुनिया बसेगी।
बह चुका जो रक्त अब तक,
लिख चुका इतिहास काला।
अब न क्या पशुता मिटेगी
पा दिवाली का उजाला !

एक है ये देश भारत
एक ही सन्तान इसकी।
सिक्ख हिन्दू या मुसलमां,
एक ही है आन जिसकी।
मुक्ति की यह किरण वेला
छा रही वन-वन डगर में।
आज घी के दीप सजनी,
जल रहे घर घर नगर में।

हीरादेवी चतुर्वेदी

धोबियों का नृत्य।

लो. छुन छुन, छुन छुन,
छुन छुन, छुन छुन,
नाच गुजरिया हरती मन !
उसके पैरों में घुँघरू कल;
नट की कटि में घंटियां तरल
वह फिरकी सी फिरती चंचल,
नट की कटि खाती सौ सौ बल
लो, छुन छुन, छुन छुन,
छुन छुन, छुन छुन,
ठुमुक गुजरिया हरती मन।

उड़ रहा ढोल धाधिन, धातिन,
औ हुडुक घुडुकता डिम रे डिम,
मंजीर खनकते खिन खिन खिन,
मद मस्त रजक, होली का दिन,
लो छुन छुन, छुन छुन,
छुन छुन, छुन छुन,
थिरक गुजरिया हरती मन !

फहराता लहँगा लहर लहर,
उड़ रही ओढ़नी फर, फर, फर,
चोली के कन्दुक रहे उभर,
(स्त्री नहीं गुजरिया, वह है नर)
लो, छुन छुन, छुन छुन,
छुन छुन, छुन छुन,
हुलस गुजरिया हरती मन !

—'पन्त'

दुखी किसान

कड़ी धूप में, लू में; हैं हल चलाते।
ज़मीं जलती है, पैर हैं चल-चलाते।
न इञ्जिन यहां हैं, न हैं कल चलाते।
सभी काम हैं हाथ के बल चलाते।

किया करते हैं एक लोहू पसीना।
कहे जाते हैं हाय! तब भी कमीना।

नहीं मिलती है पेट-भर हमको रोटी।
न जुड़ता है कपड़ा सिवा एक लंगोटी।
यहां झोपड़ी मांद से भी है छोटी।
कहें और क्या, अपनी किस्मत है खोटी।

नहीं ऐसा दुख जो उठाया न हमने।
कभी किन्तु दुखड़ा सुनाया न हमने॥

शरण किसकी जायें, किसे हम पुकारें।
कहां तक बहाएं कहो अश्रुधारें।
अहो, शोक! जिनपर कि हम प्राण वारें।

निकलने न दें कोई उठने की सूरत।
बनाये रहें हमको मिट्टी की मूरत॥

जमीं जिसमें दिन-रात यों सर खपाएं।
उसे खाद दें, हड्डियां तक घुलायें।
मगर हाय? कुछ लाभ लेने न पायें।
जमींदार बेदख्ल कर दें, छुड़ायें।

हमें प्राण से भी अधिक जो है प्यारी।
न आखिर को हो सकती है वह हमारी॥

जिसे देखिये है वह आंखें दिखाता।
पियादा भी है शाह बन बन के आता।
न दो कुछ तो है धमकियां दे के जाता।
"अभी देख इसका मजा तू है पाता"।

है खाली हुआ टेंट ही देते देते।
चढ़े भेंट हम भेंट ही देते देते॥

जमींन्दार के पेट भरते नहीं हैं।
ये खाते हैं इतना अफरते नहीं हैं।
किसानों पे क्या जुल्म करते नहीं हैं।
अभागे हैं हम हाय! मरते नहीं हैं।

जिलेदार जीभर हमें लूटते हैं।
न पटवारियों से भी हम छूटते हैं।

गए गुजरे संसार में हीन हैं हम।
सुदामा से भी सौ गुने दीन हैं हम।
पड़ा भाड़ में हो जो वह मीन हैं हम।
महा घोर अज्ञान में लीन हैं हम।

न हम पर कभी कोई करता नजर है।
बला पर बला और अपना यह सर है।

सुनायें किसे दुःख की हम यह कहानी।
हमरा यहां कौन है दोस्त जानी।
बहुत मिट चुके हैं, बहुत खाक छानी।
लिया स्वाद क्या हमने करके किसानी।

नहीं कटते दिन पेट हम काटते हैं।
खुशी बोते हैं हाय! गम काटते हैं॥

(गया प्रसाद शुक्ल 'स्नेही')

राजाओं से

तुम प्रजा पाल ! तुम लोक पाल !
क्या धर्म परायण भूप तुम्ही !
बोलो बोलो, विश्वम्भर के
धरणी पर प्रतिनिधि-रूप तुम्हीं !

प्राणों के ग्राहक आज बने
तुम तो थे प्राणों के रक्षक
तुम जनपालक कल के युग के
बन गए आज जन के भक्षक

जिनके धन के बल पर तुमने
ये किये खड़े प्रासाद बड़े
सिंच-सिंच कर जिनके लोहू से
उद्यान तुम्हारे आज खड़े

जिनके प्रपुष्ट कन्धों पर हूँ
साम्राज्य तुम्हारा आज टिका
उनका यश, मान, लाज सब कुछ
है आज तुम्हारे हाथ बिका

तुम आज प्रजा का रक्त मांस
शोषण कर हृष्ट प्रपुष्ट बने

उनके शोणित में रंगते हो
तुम अपने वैभव के सपने

उन कंकालों के हाड़ों में
हैं अग्नि शिखाएं धधक रहीं
सो सुवर्ण-सिंहासन के नीचे
हैं ज्वाला मुखियां भभक रहीं

हो गयी अहिंसा के शिर पर
हिंसा की सब धारें कुंठित
लो, हुआ तुम्हारे ही शिर से
गिर स्वर्ण मुकुट वह भू-लुंठित

•

सपनों के दिन अब बीत गए
अब अन्धड़ सा नवयुग आया
नंगों-भूखों की हाड़ों से
ऐश्वर्य तुम्हारा टकराया

छोड़ो मखमल की शय्यायें
दे मदिरा के प्याले फोड़ो
युग युग से हैं बन्दी विवेक
उस कारा के ताले तोड़ो

तुम निभा न सकते ठीक इसे
दे दो जनता को यह शासन
वैभव के कीट ! वहां अपना
कर लो विस्मृति में निर्वासन

•

सुधीन्द्र

दो दृश्य

(१) भिक्षुक

वह आता—
दो टूक कलेजे के करता पछताता पथ पर आता !
पेट पीठ दोनों मिलकर हैं एक
चल रहा लकुटिया टेक
मुट्ठी भर दाने को, भूख मिटाने को
मुँह फटी-पुरानी झोली का फैलाता—
दो टूक कलेजे के करता, पछताता पथ पर जाता !

साथ दो बच्चे भी हैं सदा हाथ फैलाए
बायें से वे मलते हुए पेट को चलते
और दाहिना दया-दृष्टि पाने की ओर बढ़ाए ।
भूख से सूख ओंठ जब जाते
दाता भाग्य विधाता से क्या पाते —
घूँट आँसुओं के पीकर रह जाते ।

चाट रहे जूठी पत्तल वे, कभी सड़क पर खड़े हुए,
और झपट लेने को उनसे कुत्ते भी हैं अड़े हुए ।
ठहरो, अहा मेरे हृदय में अमृत, मैं सींच दूँगा,
अभिमन्यु जैसे हो सकोगे तुम !
तुम्हारे दुख मैं अपने हृदय में खींच लूँगा ॥

—सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'

वह बुड्ढा

(१)

खड़ा द्वार पर, लाठी टेके,
वह जीवन का बूढ़ा पंजर,
चिमटी उसकी सिकुड़ी चमड़ी
हिलते हड्डी के ढांचे पर।
उभरी ढीली नसें जालसी
सूखी ठठरी से हैं लिपटीं,
पतझर में ठूँठे तरु से ज्यों
सूनी अमर बेल हो चिपटी।

(२)

उसका लम्बा डील डौल है,
हड्डी कट्टी काठी चौड़ी,
इस खंडहर में बिजली सी
उन्मत्त जवानी होगी दौड़ी।
बैठी छाती की हड्डी अब,
झुकी रीढ़ कमठा सी टेढ़ी,
पिचका पेट, गढ़े कन्धों पर,
फटी बिवाई से है एड़ी !

(३)

हाथ जोड़, चौड़े पंजों की
गुँथी अँगुलियों को कर सन्मुख
मौन त्रस्त चितवनसे,
कातर वाणी से वह कहता निज दुख।
गर्मी के दिन, धरे उपरनी सिर पर,
लुंगी से ढाँपे तन,—
नंगी देह भरी बालों से, —
वन मानुस सा लगता वह जन।

(४)

भूखा है: पैसा पा, कुछ गुनगुना
खड़ा हो, जाता वह घर,
पिछले पैरों के बल उठ
जैसे कोई चल रहा जानवर।
काली नारकीय छाया निज
छोड़ गया वह मेरे भीतर,
पैशाचिक सा कुछ दुखों से
मनुज गया शायद उसमें मर।

—सुमित्रानंदन पन्त

संघर्ष

है कैसा संघर्ष

है अगणित सेनाओं का दल,
वायुयान उड़ते हैं प्रति पल,
गरज रहा है गर्वित पशु-बल,
पर इन सब में आज अकेला
लड़ता है आदर्श,
है कैसा संघर्ष !

देश-भक्त वीरों के ही शव,
दिखते हैं सब ओर पड़े अब,
मृत्यु नृत्य करती है ताण्डव,
कुचल रहा है न्याय-दया को
पशुता का उत्कर्ष;
है कैसा संघर्ष !

निर्भय नहीं किसी का है मन,
है न स्वतन्त्र किसी का जीवन,
होता है आत्मा का क्रन्दन,
दया-हीन सत्ता को जग का
है विषाद ही हर्ष;
है कैसा संघर्ष !

—गोपाल शरण सिंह

युग चला

सम्बल नये पदक्षेप से

(१)

चला चला चला—युग चला
धक, धक, धक, ज्वलित—प्राण
अमित तेज, अखिल वेग लिए
युग चला !

(२)

पूरब में पश्चिम में
उत्तर में दक्षिण में
दिग दिगन्त भू-नभ में
प्रलयंकर तोपों से
विस्फोटक गोलों से

(३)

ग्रस्त स्तब्ध, जड़-जङ्गम
सागर उर उथल-पुथल
दिल दिल में हलचल
कन-कन में चहल-पहल
डोले गिरि, फूटी चट्टानें
दगी सलामी
कँपी धरा !

(४)

लाला जी, सम्भलो ! सम्भलो
रुको, रुको, मुल्ला जी दूर हटो, पंडित जी
मन्द, शिथिल-गति, जर्जर हाथों से
मन-गढ़न्त कल्पित विश्वासों से
मोह से ममता से, छिन्न भिन्न साहस से

क्या रोक सकोगे? छूना मत ! छूना मत ?
ना ! ना ! ना ! बाबा मरना मत ।
ऐसा दुस्साहस करना मत यों कभी किसी के रोके भी
रुक पाए हैं तूफान भला ?

चला, चला, चला, युग चला !

माना उस पिछले युग के, तुम ही संचालक, संरक्षक थे,
पर अब बात और है, भेद और है ।

बौद्धिक, वैज्ञानिक संधानों का
अन्ध विश्वासों का घातक युग यह ।
केवल भावों के उत्थान-पतन से
चलना तो कहां ! हिलना-डुलना भी नहीं,
मौन हुए सब कौशल नत मस्तक विषाद'
शत प्रति ग्रन्थों के घूँघट
अट्टहास कर चली उन्मुक्त कला
चला चला चला ! युग चला !

—दीन भाई पन्त

कैसे हँसूँ बता दो ना

(१)

जीवन में उत्साह नहीं है,
रचित सुख की राह नहीं है,
जी भर हँसू चाहती जैसे,
कोई युक्ति बता दो ना !

(२)

किसे नहीं इच्छा हँसने की,
भाता किसे वेदना का ज
इस असमर्थ हृदय को मेरे,
तुम्हीं समर्थ बना दो ना !

(३)

बरबस हँसी खेलती मुख पर,
आँखों में रहती आँसू पर,
कैसे रोकूँ यह दुर्बलता
मुझे तुम्हीं बता दो ना !

(४

दुख को सुख कैसे मानूँ ?
सुख-दुख मिथ्या कैसे जानूँ ?
अब तक सीख नहीं पाई हूँ ?
यह सब तुम्हीं सिखा दो ना ?

—तारा पाण्डे

तूने अभी नहीं दुख पाए।

तूने अभी नहीं दुख पाए।
शूल चुभा तू चिल्लाता है,
पांव सिद्ध तब कहलाता है,
इतने शूल चुभें शूलों के चुभने का पग पता न पाए।
तूने अभी नहीं दुख पाए।

बीते सुख की याद सताती ?
अभी बहुत कोमल है छाती ?
दुख तो वह है जिसे सहन कर पत्थर सी छाती हो जाए।

तूने अभी नहीं दुख पाए।

कंठ करुण स्वर में गाता है,
नयनों में घन घिर आता है
पन्ना-पन्ना रँग जाता है
लेकिन, प्यारे, दुख तो वह है
हाथ न डोले, कंठ न बोले, नयन मुँदे हों या पथराए।
तूने अभी नहीं दुख पाए।

—बच्चन

मानव

मैंने मानव को प्यार किया ।
मानवता के आराधन से
पावन उर का संसार किया ।
मैंने मानव को प्यार किया ।
हिम गिरि से उन्नत हैं मानव,
सागर से गहन-गंभीर कभी,
रजकण से क्षुद्र कभी बनता,
मारुत से अधिक अधीर कभी;
इस लघुता और उच्चता ने
मानवता का श्रृंगार किया ।
मैंने मानव को प्यार किया ।
मैं पुष्पों का अनुरागी हूं,
है इन्द्र धनुष से स्नेह मुझे,
पर, ये मानव-उर से सुन्दर
है, इसमें चिर-संदेह मुझे,
मेरे प्राणों पर मानव ने
अक्षय अनन्य अधिकार किया,
मैंने मानव को प्यार किया ।
तम से प्रकाश की महिमा है,
उत्थान पतन से खिलता है,

दुर्बलता में बल को जग में,
बल होने का यश मिलता है।
इससे मानव दुर्बलता का
गौरव मैंने स्वीकार किया।
मैंने मानव को प्यार किया।
हैं चक्रवाक, चातक, चकोर,
विख्यात व्यथा इनके मन की,
पर, मानव-उर की गहन व्यथा
चिर-परिचित मेरे जीवन की
मानव सुख-दुख ही ने मेरे
गीतों में रस-संचार किया।
मैंने मानव को प्यार किया।

—जगन्नाथ प्रसाद 'मिलिंद'

"नव युग के गान" से

माँझी कितनी दूर किनारा ?

कितनी दूर किनारा-मांझी ! कितनी दूर किनारा !
पथ-दर्शक बन झांक रहा है—
वह जीवन ध्रुव तारा ।
मांझी ! मुझे बताने चलना—
कितनी दूर किनारा ?

× × ×

गति ही जीवन, जीवन गति है—
गति में लय हो जाना !
गति की यति का अर्थ यही है—
निज अस्तित्व मिटाना ।
रवि गति मय है, शशी गति मय है
गति मय हैं सब तारे
गतिमय लता, प्रसून, तरु, प्रकृति—
खेल खेलती न्यारा !
मांझी ! कितनी दूर किनारा
गतिमय अवनि घूमती निशिदिन—
किस प्रिय की गलियों में ?
कितना चल कर, प्राप्त करेगी
निज उद्देश्य-किनारा ?
कितनी दूर किनारा मांझी ! कितनी दूर किनारा ?

—हृदय नारायण पाण्डेय 'हृदयेश,

क्या जगत में भ्रान्ति ही है ?

एक दिन पूछा विचरती वायु से मैंने, 'कहो क्या—
शान्ति भी है' ?
क्या जगत में भ्रान्ति ही ?
"है तुम्हारे विशद पथ में
नगर, ग्राम, उजाड़ उपवन;
मार्ग में घर और मरघट
महल औ' पावन तपोवन;
"तुम अचल आकाश के
उर में रमा करती निरन्तर
कभी क्रीड़ास्थल बनाती
चिर विकल विक्षिप्त सागर,
"वायु बोली, क्या कहीं कुछ शान्ति भी है ?
क्या जगत में भ्रान्ति ही है ?
गीत मेरा सुन स्वयं संगीत मय हो वायु कहती—
"है न जाने कौन-सा कोना जहां, कवि शान्ति रहती ?
"किन्तु जाऊँ, खोज आऊँ—
क्या कहीं कुछ शान्ति भी है ?"
क्या जगत में भ्रांति भी है ?

—नरेन्द्र शर्मा

घट

कुटिल कंकड़ों की कर्कश रज
मल मल कर सारे तन में
किस निर्मम निर्दय ने मुझको
बांधा है इस बन्धन में ?

फांसी सी है पड़ी गले में
नीचे गिरता जाता हूं;
बार-बार इस अन्ध-कूप में
इधर-उधर टकराता ।

ऊपर नीचे नभ ही नभ है
बन्धन है अवलम्ब यहां !
यह भी नहीं समझ में आता
गिर कर मैं जा रहा कहां !

कांप रहा हूं; भय के मारे
हुआ जा रहा म्रिय माण;
ऐसे दुखमय जीवन से हा !
किस प्रकार पाऊँ मैं त्राण ?

सभी तरह विवश, करूँ क्या
नहीं दीखता एक उपाय,
यह क्या ?—यह तो अगम नीर है,
डूबा ! अब डूबा, मैं हाय !

भगवन् ? हाय ? बचालो अब तो,
तुम्हें पुकारूं मैं जब तक,
हुआ तुरन्त निमग्न नीर में
आर्त नाद् करके तब तक ।

अरे, कहा वह गई रिक्तता,
भय का भी अब पता नहीं,
गौरववान हुआ हूं सहसा,
बना रहूं तो क्यों न यहीं !

पर मैं ऊपर चढ़ा जा रहा
उज्ज्वल तर जीवन लेकर,
तुमसे उऋण नहीं हो सकता
यह नवजीवन भी देकर ।

—श्री सियाराम शरण गुप्ता

गिरि शिखर

गिरि शिखर, गिरि शिखर, गिरि शिखर !
जबकि ध्येय बन चुका,
जबकि उठ चरण चुका,
स्वर्ग भी समीप देख—मत ठहर, मत ठहर, मत ठहर !
गिरि शिखर; गिरि शिखर, गिरि शिखर ?
संग छोड़ सब चले,
एक तू रहा भले,
किन्तु शून्य पंथ देख—मत सिहर, मत सिहर, मत सिहर !
गिरि शिखर, गिरि शिखर, गिरि शिखर !
पूर्ण हुआ एक प्राण,
तन मगन, मन मगन,
कुछ न मिले छोड़कर—पत्थर, पत्थर, पत्थर
गिरि शिखर, गिरि शिखर, गिरि शिखर !

—'बच्चन'

तीन गीत

१.

अनन्त की ओर

(१)

गरजता सागर, तम है घोर
घटा घिर आई, सूना तीर
अँधेरी सी रजनी में पार
बुलाते हो कैसे बेपीर ?

(२)

नहीं है तरिणी कर्णाधार
अपरिचित है वह तेरा देश,
साथ है मेरे निर्भय देव !
एक बस तेरा ही सन्देह !

(२)

हाथ में लेकर जर्जर बीन
इन्हीं बिखरे तारों को जोर,
लिए कैसे पीड़ा का भार
देव ! आऊँ अनन्त को ओर !

२.

गा लेने दो क्षण भर गायक!

(१)

पल भर ही गाया चातक ने
रोम रोम में अमर प्यास भर
कांप उठा आकुल सा अग जग
सिहर उठा तारों मय अम्बर,
भर आया घन का उर गायक!

(२)

क्षण भर ही गाया फूलों ने
दृग में जल अधरों में स्मित धर
लघु उर के अनन्त सौरभ से,
कर डाला यह पथ नन्दन चिर;
गाया चिर जीवन भर, गायक!

(३)

एक निमिष गाया दीपक ने
ज्वाला का हँस आलिंगन कर,
उस लघु पल से गर्वित है तू
लघु रजकण आभा का सागर
दिव उस पर न्यौछावर, गायक।

(४)

एक घड़ी गा लूँ प्रिय मैं भी
मधुर वेदना से भर अन्तर,
दुख हो सुखमय, सुख हो दुखमय
उपल बनें पुलकित से निर्झर,
मरु हो जाये उर्वर, गायक

गा लेने दो क्षण भर गायक!

३.

जो तुम आ जाते एक बार !

कितनी करुणा कितने संदेश
पथ में बिछ जाते बन पराग,
गाता प्राणों का तार-तार
अनुराग भरा उन्माद राग,
आंसू लेते वे पद पखार ।

हँस उठते पल में आई नैन
धुल उठता ओठों से विषाद,
छा जाता जीवन में वसन्त
लुट जाता फिर संचित विराग,
आँखें देतीं सर्वस्व वार ।

—श्री महादेवी वर्मा

पदावली

मेरा तेरा मनुआँ कैसे इक होइ रे ।

मैं कहता हौं आँखिन देखी, तू कहता कागद की लेखी ।
मैं कहता सुरझावन हारी, तू राख्यो अरुझाई रे ।
मैं कहता तू जागत रहियो, तू रहता है सोई रे ।
मैं कहता निरमोही रहियो तू जाता है मोहि रे ।
जुगुन जुगुन समुझावत हारा, कहा न मानत कोई रे ।
सतगुरु धारा निरमल बाहै वा मैं काया धोइ रे ।
कहत कबीर सुनो भाई साधो, तबहि वैसाहोइ रे ।

कबीर

मोको कहा ढूँढे बन्दे ! मैं तो तेरे पास में ।
ना मैं देवल ना मैं मसजिद ना काबे कैलास में ।
ना मैं कौनों क्रिया करम में ना मैं जोग बिराग में ।
खोजी होय तुरतै मिलि हौं पल भर की तलास में ।
मैं तो रहौं सहर के बाहर मेरी पूरी मवासमें ।
कहै कबीर सुनो भाई साधो सब साँसोंकी साँस में ।

× —कबीर

× ×

काहे रे बन खोजन जाई। सरब निवासी सदा अलेपा, तोही संग समाई।

पुष्प-मध्य ज्यों बास बसत है, मुकर माहि जस छाई।
तैसे ही हरि बसै निरन्तर, घट ही खोजो भाई॥
बाहर भीतर एकै जानो, यह गुरु ज्ञान बताई।
जन नानक बिन आपा चीन्हे, मिटै न भ्रम की काई॥

× × ×

जो नर दुख में दुख नहीं मानै।

सुख सनेह अरु भय नहिं जाके, कंचन माटी जानै॥
नहि निंदा नहि अस्तुति जाके, लोभ मोह अभिमान।
हरष सोक तें रहे नियारो, नाहिं मान अपमान॥
आसा मनसा सकल त्यागि के, जग ते रहै निरास।
काम करोध जेहि परसै नाहिं, तेहि घट ब्रह्म निवास।
गुरु किरपा जेहि नरपे कीन्हीं, तिन्ह यह जुगुति पिछानी।
नानक लीन भयो गोबिन्द सों, ज्यों पानी संग पानी॥

—नानक

भक्ति धारा

(१)

प्रभु मोरे अवगुण चित न धरो।

समदरशी है नाम तिहारो, चाहे तो पार करो ॥
इक नदिया इक नार कहावत, मैलो ही नीर भरो।
जब मिल करके एक बरण भये, सुरसरि नाम पर्यो ॥
इक लोहा पूजा में राखत, इक घर बधिक पर्यो।
पारस गुण—अवगुण नहिं चितवत, कंचन करत खरो ॥
यह माया भ्रमजाल कहावत, सूरदास सगरो।
अब की बेर मोहिं पार उतारो, नहिं प्रन जात टरो ॥

सूर

× × ×

(२)

अँखियाँ हरि दर्शन की प्यासी।

देख्यो चाहत कमलनैन को, निसिदिन रहत उदासी ॥
आये ऊधो फिरि गए आँगना, डारि गए गर फाँसी ॥
केसरि—तिलक मोतिन की माला, वृन्दावन को बासी ॥
काहू के मन की कोऊ न जानत, लोगन के मन हाँसी ॥
सूरदास प्रभु! तुमरे दरस बिन लैहों करवत कासी ॥

सूर

× + ×

मेरो तो गिरधर गोपाल, दूसरो न कोई।
जाके सिर मोर मुकट मेरो पति सोई॥
तात मात भ्रात बन्धु आपनो न कोई।
छाँडि दई कुल की कानि, काह करि है कोई॥
संतन ढिग बैठि बैठि लोक लाज खोई।
चुनरी के किए टूक—टूक ओढ़ लीन्ह लोई॥
मोती मूंगे उतार दीन्हें बन-माल पोई।
अँसुवन जल सींचि सींचि प्रेम—बेलि बोई।
अब तो बेलि फैलि गई, आनन्द फल होई॥
भगति देखी राजि हुई, जगत देख रोई।
दासी, मीरा, लाल गिरधर, तारो अब मोई॥

\+ \+ \+ मीरा

हे री मैं तो दरद दीवानी,
मेरो दरद न जाने कोई।

घायल की गति घायल जाने, की जिस लाई होइ।
जौहरि की गति जौहरि जाने, की जिस जौहर होइ।
सूली ऊपर सेज हमारी सोवन किस विध होई।
गगन मँडल पै सेज पिया की, किस विध मिलना होई।
दरद की मारी बन बन डोलूं, बैद मिल्या नहिं कोई।
मीरा की प्रभु पीर मिटेगी, बैद सँवलिया होइ।

\+ × × मीरा

जोगी मत जा, मत जा, पाँव पड़ूँ मैं तेरे।
प्रेम भक्ति को पैंडो ही न्यारो, हमकूं गैल बता जा,
अगर चन्दन की चिता रचाऊं, अपने हाथ जला जा।
जल-जल भई भस्म की ढेरी, अपने अंग लगा जा,
मीरा कहै, प्रभु गिरिधर नागर, जोत में जोत मिला जा।

—मीरा

(२)

मानुष हौं तो वही रसखान बसौं ब्रज गोकुल गांव के ग्वारन।
जो पसु हौं तो कहा बसु मेरो, चरौं नित नन्द की धेनु मझारन।
पाहन हौं तो वही गिरि को जो कियो हरि छत्र पुरन्दर धारन।
जौ खग हौं तो बसेरो करौ मिलि कालिंदी कूल कदम्ब की डारन।

× × +

मोर पखा सिर ऊपर राखिहौं, गुंज की माल गरे पहिरौंगी।
ओढ़ि पितांबर लै लकुटी बन गोधन ग्वारिन संग फिरौंगी॥
भावतो सोहि मेरो रसखान सो तेरे कहे सब काम करौंगी।
या मुरली मुरलीधर की अधरान धरी अधरा न धरौंगी॥

× × × —रसखान

छत्रपति शिवाजी

(१)

इन्द्र जिमि जंभ पर बाडव सुअंभ पर,
रावण सदम्भ पर रघुकुल राज है।
पौन वारिवाह पर, संभु रतिनाह पर,
ज्यों सहस्रबाहु पर राम द्विज राज है।
दावा द्रुमदंड पर, चीता मृग-झुण्ड पर,
भूषण, वितुण्ड पर, जैसे मृगराज है।
तेज तम-अंस पर, कान्ह जिमि कंस पर,
त्यों मलिच्छ- वंश पर सेर सिवराज है॥

(२)

पूरब के उत्तर के प्रबल पछाह हूं, वे सब बादशाह के गढ़ कोट हरते।
भूषण कहैं यो अवरंग सो वजीर, जीति लीबे को पुरतगाल सागर उतरते।
सरजा सिवा पर पठावत मुहीम काज हजरत हम मरिबे को नहीं डरते॥
चाकर हैं उजुर कियो न जाय नेक पै कछु दिन उबरते तो घने काज करते॥

(३)

चकित चकत्ता चौंकि चौंकि उठै बारबार दिल्ली दहसति चितै चाहकसति है।
बिलखि बदन बिलखात बिजैपुर पति फिरत फिरंगिन की नारी फरकति है॥
थर थर काँपत कुतुब शाह गोलकुण्डा हहरि हबसभूप भीर भरकति है।
राजा शिवराजके नगारन की धाकसुनि केतेबादशाहन की छाती धरकति है॥

——भूषण

बाल-लीला

(१)

मैया मोरी, मैं नाहि माखन खायो।

भोर भये गैयन के पीछे मधुबन मोहि पठायो ॥

चार पहर बंसीबट भटक्यो, साँझ परे घर आयो ॥

मैं बालक बहियन को छोटो, छींको किहि बिधि पायो ॥

ग्वाल बाल सब बैर परे हैं, बरबस मुख लपटायो ॥

तू जननि ! मति की अति भोरी, इनके कहि पतियायो ॥

जिय तेरे कछु भेद उपजत है, जानि परायो जायो ॥

यह लै अपनी लकुट-कमरिया, बहुतहि ना नचाओ ॥

सूरदास तब बिहँसि जसोदा, लै उर कंठ लगायो ॥

(२)

मैया, मोहि दाऊ बहुत खिजायो।

मोसों कहत, मोल को लीनो, तू जसुमति कब जायो ॥

कहा करों यहि रिस के मारे, खेलन हौं नहि जातु।

पुनि-पुनि कहत कौन है माता, को है तुमरो तातु ॥

गोरे नन्द, जसोदा गोरी, तुम कत स्याम शरीर।

चुटकी दे दे हँसत ग्वाल सब, सिखै देत बलवीर ॥
तू मोही को मारन सीखी, दाऊहिं कबहूँ न खीजै।
मोहन को मुख रिस-समेत लखि जसुमति सुनि-सुनि रीझै
सुनहु कान्ह, बलभद्र चबाई, जनमत ही को धूत।
सूर, स्याम ! मो गोधन की सौं, हौं मैया तू पूत ॥

(३)

मैया, मैं ■ चरैहौं गाई।

सिगरे ग्वाल घिरावत मोसों, मेरे पाई पिराई।
जो न पत्याहि पूछ बलदाउहिं अपनी सौंह दिवाह ॥
मैं पठवति अपने लटिका कूँ आवै मन बराह ॥
'सूर' श्याम मेरो अति बालक मारत ताहि रिंगाइ ॥

—सूरदास

कुंडलियां

दौलत पाय न कीजिए सपने में अभिमान ।
चंचल जल दिन चारि को ठांऊ न रहत निदान ॥
ठांऊ न रहत निदान जियत जग में जस लीजै ।
मीठे बचन सुनाय विनय सब ही की कीजै ॥
कह गिरधर कविराय अरे यह सब घट तौलत ।
पाहुन निसि दिन चारि रहत सबही के दौलत ॥

× × +

पानी बाढ्यो नाव में, घर में बाढ्यो दाम ।
दोनों हाथ उलीचिए, यहै सयानो काम ॥
यहो सयानो काम राम को सुमरिन कीजै ।
परस्वारथ के काज सीस आगे धरि दीजै ॥
कह गिरिधर कविराय बड़ेन की यही बानी ।
चलिए चाल सुचाल राखिए अपनो पानी ॥

× × ×

बीती ताहि बिसारि दे आगे की सुधि लेइ ।
जो बनि आवै सहज में ताहि में चित देइ ॥
ताहि में चित देइ बात जोई बनि आवै ।
दुरजन हंसै न कोई चित्त में खता न पावै ॥
कह 'गिरिधर' कविराय यहै करु मन परतीती ।
आगे को सुख समुझि होइ जो बीती सो बीती ॥

× + ×

—गिरिधर कविराय

मित्र-मिलन

सुदामा की पत्नी (सुदामा से)—

कोदों सवां जुरतो भरि पेट, न चाहति हौं दधि-दूध मिठौती।
सीत बितीतत जौ सिसियात तो हौं हठती पै तुम्हें न हठौती॥
जौं जनती न हितू हरि सों तो मैं काहे को द्वारिकै पेलि पठौती।
या घर ते कबहूँ न गयो पिय, टूटो तवा अरु फूटी कठौती॥

सुदामा—

छांहि सबै जक तोहिं लगी बक; आठहू जाय यहै मन ठानी।
जातहिं दैहैं लदाय लदा भरि, लैहौं लदाय यहै जिय जानी।
पैये कहां ते अटारी अटा जिनको विधि दीन्हीं है टूटी सी छानी।
जो पै दरिद्र लिखो है ललाट तौ काहू पै मेटि न जात अजानी।

पत्नी—

हूजै कनावड़ो बार हजार लौं जौं हितू दीन दयाल सों पाइये।
तीनहु लोक के ठाकुर हैं तिनके दरबार न जात लजाइये॥
मेरी कही जिय में धरिके पिय, और न भूलि प्रसंग चलाइये।
और के द्वार सों काज कहा पिय, द्वारिकानाथ के द्वारा सिधाइये॥

सुदामा—

द्वारिका जाहु जू, द्वारिका जाहु जू, आठहू जाय यहै जक तेरे।
जो न कहो करिये तो बड़ो दुख जैये कहां अपनी गति हेरे॥

द्वार खरे प्रभु के छरिया तहँ भूपति जान न पावत नेरे ।
पांच सुपारी हैं देखु विचार कैं भेंट को चारि नबाउर मेरे ॥

[और जब पत्नी के अनुरोध पर सुदामा 'पावसेर चाउर' की पोटली बाँधे कृष्ण के द्वार पर पहुंचे तो द्वारपाल ने जा कर द्वारिकानाथ से निवेदन किया—]

द्वारपाल——

सीस पगा न झँगा तन में प्रभु, जानै को आहि बसै केहि ग्राम ।
धोती-फटी-सी, लटी दुपटी अरु पाँय उपानह को नहि सामा ।।
द्वार खरो द्विज दुर्बल, देखि रह्यो चकि सो वसुधा अभिरामा ।
पूछत दीनदयाल को धाम, बतावत आपनो नाम सुदामा ॥

[यह सुनते कृष्ण उठ खड़े हो गए, सुदामा के पास दौड़ कर उससे गले मिले और उसे आदर से अन्तःपुर ले गए ।]

कृष्ण——

ऐसे बेहाल बेवाइन सों पग कण्टक जाल लगे पुनि जोये ।
"हाय ? महा दुख पायो सखा, तुम आये इतैन, कितै दिन खोये ।'
देखि सुदामा की दीन दशा करुना करि कै करुनानिधि रोये ।
पानी परात को हाथ छुयो नहिं, नैनन के जल सों पग धोये ।

——नरोत्तम दास

['सुदामा चरित' से]

धनुष भंग

तेहि अवसर शिवधनु भंगा। आए भृगु-कुल कमल-पतंगा॥
देखि महीप सकल सकुचाने। बाज झपट जनु लवा लुकाने॥
गौर शरीर भूति भलि भ्राजा। भाल बिसाल त्रिपुण्ड बिराजा॥
कटि मुनिबसन तूण दुइ दुइ। धनुशरकर कुठार कल काँधे॥
देखत भृगुपति वेस कराला। उठे सकल भय विकल भुआला॥
जनक बहोरि आइ सिर नावा। सीय बुलाइ प्रणाम करावा॥
आसिस दीन्ह सखी हरषानी। निज समाज लै गईं सयानी॥

बहुरि विलोकि विदेहसन, कहहु कहा अति भीर।
पूछत जान अजान जिमि, व्यापेउ कोप शरीर॥

समाचार कहि जनक सुनाए। जेहि कारण महीप सब आए॥
सुनत वचन फिरि अनत निहारे। देखे चापखंड महि डारे॥
अति डर उतर देत नृप नाहीं। कुटिल भूप हरषे मन माहीं॥
मन पछताय सीय महतारी। विधि संवारि सब बात बिगारि॥

सभय विलोके लोग सब, जानि जानकी भीर।
हृदय न हरष विषाद कछु, बोले श्री रघुवीर॥

नाथ शंभुधनु भंजन हारा। होइहि कोउ इक दास तुम्हारा॥
सुनहु राम जेहि शिव धनु तोरा। सहसबाहु सम सो रिपु मोरा॥
सुनि मुनिवचन लखन मुसुकाने। बोले परशुधरहिं अपमाने॥

बहु धनुहीं तोरेउँ लरिकाईं । कबहुँ न अस रिस कीन्ह गुसाईं ॥
यह धनु पर ममता केहि हेतू । सुनि रिसाय कह भृगुकुल केतू ॥

रे नृप बालक कालबस, बोलत तोहि न संभार ।
धनुहि सम त्रिपुरारी-धनु, विदित सकल संसार ॥

लषन कहा हँसि हमरे जाना । सुनहु देव सब धनुष समाना ॥
छुअत टूट रघुपतिहिं न दोषू । मुनि ! बिन काज, करिय कत रोषू ॥
बोले चितइ परसु की ओरा । रे शठ सुनेसि सुभाउ न मोरा ॥
बालक जानि बधौं नहिं तोही । केवल मुनि जड़ जानसि मोही ॥
भुजबल भूमि भूप बिन कीन्हीं । विपुल बार महिदेवन दीन्हीं ॥
सहसबाहु भुज छेदन हारा । परशु बिलोकु महीपकुमारा ॥

मातु पितुहि जनि सोच बस, करसि महीप किशोर
गर्भन के अर्भकदलन, परशु मोर अति घोर ॥

बिहँसि लषन बोले मृदु बानी । अहो मुनीस महा भटमानी ॥
पुनि पुनि मोहि देखाव कुठारा । चहत उड़ावन फूँकि पहारा ॥
कौशिक सुनहु मंद यह बालक । कुटिल कालबस निजकुल घालक ॥
काल कवल होइहि छिन माहिं । कहौं पुकारि खोरि मोहिं नाहीं ॥
लषन कहे मुनि, सुजस तुम्हारा । तुमहिं अछत को बरनै पारा ॥
अपने मुख तुम आपनि करनी । बार अनेक भाँति बहु बरनी ॥

सूर समर करनी करहिं, कहि न जनावहिं आपु ।
विद्यमान रण पाइ रिपु, कायर कथहिं प्रलापु ॥

सुनत लषन के बचन कठोरा । परशु सुधारि धरेउ कर घोरा ॥
अब जनि देइ दोष मोहिं लोगू । कटुबादी बालक बधजोगू ॥

लषन उतर आहुति सरिस, भृगुपति कोप कृसानु ।
बढ़त देखि जलसम बचन, बोले रघुकुल भानु ॥

नाथ करहु बालक पर छोहू। शुद्ध दूध मुख करिय न कोहू॥
जो लरिका कछु अनुचित कहहीं। गुरु पितु मात मोद मन भरहीं॥
करिय कृपा सिसु सेवक जानी। तुम सम सील धीर मुनि ज्ञानी॥
राम वचन सुनि कछुक जुड़ाने। कहि कछु लषन बहुरि मुसकाने॥
हंसत देखि नख शिख रिस व्यापी। राम, तोर भ्राता बड़ पापी॥
थर थर कांपहिं पुर नरनारी। छोट कुमार खोट अति भारी॥
भृगुपति सुनि सुनि निर्भय बानी। रिस तनु जरै होइ बलहानी॥
बोले रामहिं देइ निहोरा। बचौं विचारि बन्धु लघु तोरा॥

सुनि लछमण विहंसे बहुरि, नयन तरेरे राम।
गुरु समीप गवने सकुचि, परिहरि बानी वाम॥

सुनहु नाथ तुम सहज सुजाना। बालक बचन करिय नहि काना॥
कह मुनि राम जाइ रिस कैसे। अजहुं अनुज तब चितव अनैसे॥
देख जनक हठि बालक एहू। कीन्ह चहत जड़ यमपुर गेहू॥
बेगि करहु किन आँखिन ओटा। देखत छोट खोट नृप ढोटा॥
बिहंसे लखन कहा मुनि पाहिं। मूंदिय आँखि कतहुं कोऊ नाहीं॥

परशुराम तब राम प्रति, बोले बचन सक्रोध।
शंभुशरासन तोड़ि शठ, करसि हमार प्रबोध॥

राम कहेउ रिसि तजिय मुनीसा। कर कुठार आगे यह सीसा॥
जेहि रिस जाई करिय सोइ स्वामी। मोहिं जानि आपन अनुगामी॥

——गोस्वामी तुलसीदास

[राम चरित मानस से]

दोहा-मुक्तावली

(१)

उज्जल बरन, अधीन तन, एक चित्तदो ध्यान।
देखत में तो साधु है, निपट पाप की खान॥
गोरी सोवै सेज पर, मुख पर डारे केस।
चल खुसरो घर आपने, रैन भई चहुँ देस॥

—खुसरो

(२)

ऐसी बानी बोलिए मन का आपा खोय।
औरन को सीतल करै आपहु सीतल होय॥
माला तो कर में फिरै जीभ फिरै मुख माहिं।
मनुवाँ तो दहुँ दिस फिरै यह तो सुमरिन नाहिं॥
रात गँवाई सोय करि दिवस गँवायो खाय।
हरी जन्म अमोल था कौड़ी बदले जाय॥
सहज मिलै सो दूध-सम माँगा मिलै सो पानि।
कह कबीर वह रक्त-सम जामें ऐंचातानि॥
अगिन आँच सहना सुगम सुगम खड्ग की धार।
नेह निभावन एक रस महा कठिन ब्यौहार॥
जिन ढूँढा तिन पाइया गहिरे पानी पैठ।
जो बौरा डूबन डरा रहा किनारे बैठ॥

जहँ आया तहँ आपदा जहँ संसय तहँ सोग।
कहँ कबीर कैसे मिटैं चारों दीरघ रोग ॥

कहना था सो कह दिया अब कुछ कहा न जाय।
एक रहा दूजा गया दरया लहर समाय ॥

बिरहिन देय सन्देसरा सुनों हमारे पीव।
जल बिन मछली क्यों जिए, पानी में का जीव ॥

पात झरंता यों कहैं सनु तरुवर बन राय।
अब के बिछुरे ना मिले दूर परेंगे जाय ॥

कबिरा जन्त्र न बाजई, टूटि गये सब तार।
जंत्र बिचारा क्या करै चला बजावन हार ॥

जैती लहर समुद्र की तेती मन की दौर।
सहजै हीरा नीपजै जो मन आवै ठौर ॥

लंबा मारग दूर घर विकट पंथ बहु भार।
कह कबीर कस पाइये, दुर्लभ गुरु दीदार ॥

भँवर बिलंबे बाग में बहु फूलन की बास।
जीव बिलंबे विषय में अन्तहु चले निरास ॥

जल में बसै कमोदिनी चन्दा बसै अकास।
जो है जाको भावता सो ताहि के पास ॥

जाति न पूछो साधु की पूछि लीजिए ज्ञान।
मोल करो तलवार का पड़ा रहन दो म्यान ॥

आब गई आदर गया नैनन गया सनेह।
ये तीनों तब ही गए जबहिं कहा कुछ देह ॥

—कबीर

(३)

अब रहीम मुश्किल परी, गाढे दोऊ काम।
सांचे से तो जग नहीं, झूठे मिलैं न राम॥

कहु रहीम कैसे निभै, बेर केर को संग॥
वे डोलत रस आपने, उनके फाटत अंग।

कैसे निबहैं निबल जन, करि सबलनि सों बैर।
रहिमन बसि सागर बिषे, करत मगर सों बैर॥

जब लगि वित न आपुने, तब लगि मित्र न कोय।
रहिमन अंबुज अंबु बिन, रवि नाहिन हित होय॥

धनि रहीम जल पंक को, लघु जिय पियत अघाय।
उदधि-बड़ाई कौन है, जगत पियासो जाय॥

पावस देखि रहीम मन, कोइल साध्यो मौन।
अब तो दादुर बोलि हैं, हमैं पूछि है कौन॥

प्रीतम छवि नैनन बसे, पर छवि कहाँ समाय।
भरी सराय रहीम लखि आप पथिक फिरि जाय॥

रहिमन नीचन संग बसि, लगत कलंक न काहि।
दूध कलारी कर गहे, मद समुझै सब ताहि।

रहिमन पानी राखिये बिनु पानी सब सून।
पानी गए न ऊबरैं, मोती, मानुष, चून॥

रहिमन निज मन की व्यथा मन ही राखो गोय।
सुनि अठिलैहैं लोग सबै बाँटि न लैंगो कोय।

रहिमन धागा प्रेम को मत तोरो चटकाय।
टूटे से फिर नहिं जुरै-जुरै गांठि परि जाय॥ —रहीम

(४)

प्रेम प्रेम सब कोऊ कहत प्रेम न जानत कोय।
जो जन जाने प्रेम तौ मरे जगत क्यों रोय ॥

कमल तन्तु से छीन अरु कठिन खड्ग की धार।
अति सूधो-टेढो बहुरि प्रेम-पन्थ अनिवार ॥

—रसखान

(५)

हिन्दू में क्या और है मुसलमान में और।
साहिब सबका एक है व्याप रहा सब ठौर ॥
मोहन लखि जो बढ़त सुख सो कछु कहत न नैन।
नैनन के रसना नहीं, रसना के नहिं नैन ॥

—रसनिधि

(६)

सोहन ओढ़े पीत पट, स्याम सलोने गात।
मनों नीलमनि- सैल पर, आतप परयो प्रभात ॥

या अनुरागी चित्त की गति समुझै नहिं कोय।
ज्यों ज्यों बूड़ै स्याम रंग, त्यों-त्यों उज्जल होय ॥
कनक कनक ते सौ गुनो, मादकता अधिकाय।
वा खाए बौरात है, या पाए बौराय ॥
अरे हंस या नगर में जैयो आप विचारि।
कागन सो प्रीती करी कोयल दई बिडारि ॥

सोहत संग समान सों यहै कहैं सबु लोग।
पान पीक ओठनु बनै काजर नैननु जोगु॥

लाज लगाम न मानहिं नैना मो बस नाहिं।
ए मुँहजोर तुरंग ज्यों ऐंचत हूँ चलि जाहिं॥

इहि आसा अटक्यो रहै, अलि गुलाब के मूल।
ह्वैहैं बहुरि बसन्त ऋतु, उन डारन वे फूल॥

सीस मुकुट कटि काछनी, कर मुरली उर माल।
यहि बानक मो मन बसौ, सदा बिहारी लाल॥

×—बिहारी

(७)

बुरे लगत सिख के बचन, हिये बिचारो आप।
करुवो भेषज बिन पिए, मिटै न तन की ताप॥

फेरी न ह्वै है कपट लों, जो कीजै ब्योहार।
जैसे हांडी काठ की, चढ़ै न दूजी बार॥

विद्या-धन उद्यम बिना, कहौ जु पावै कौन।
बिना डुलाए ना मिले, ज्यों पंखा की पौन॥

पिसुन छल्यो नर सुजन सो, करत विसास न चूकि।
जैसे दाध्यो दूध को, पीवत छाँछहि फूंकि॥

भली करत लागति बिलम, बिलम न बुरे विचार।
भवन बिनावत दिन लगैं, ढाहत लगत न बार॥

हितहू की कहिए न तेहि, जो नर होय अबोध।
ज्यों नकटी को आरसी, होत दिखाए क्रोध॥

सबै सहायक सबल के, कोऊ न निबल सहाय।
पवन जगावत आगि को, दीपहि देत बुझाय॥

सरसुति के भण्डार की, बड़ी अपूरब बात।
ज्यों खरचै त्यों-त्यों बढ़े, बिन खरचे घटि जात॥

क्यों कीजे ऐसो जतन, जाते काज न होय।
परवत पर खोदै कुंवा, कैसे निकसै तोय॥

दीबो अवसर को भलो, जासों सुधरे काम।
खेती सूखे बरसिबो, घन को कौने काम॥

—वृन्द

(८)

सीस गठा पग पानहिं कर हँसिया रज माथ।
यहि बानक मो मन बसो सदा सुखेती-नाथ॥
पढत न एकन के तनय कीन्हे यत्न अनेक।
रहत अभागे मूढ ह्वै शुल्क बिना सत एक॥
एकन के नित स्वानहू दूध जलेबी खाहिं।
अन्न बिना सुत एक के 'हा रोटी' रिरिआहिं॥
इक नूतन सारी धरति भरि-भरि द्रंक अनेक।
फिरहि उघारि इक सदा वस्त्र न पावहिं नेक॥

—करुण